जैन समाजात प्रचंड खपाचे व लोकप्रिय मासिक

जैन जागृति

(Since 1969) www.jainjagruti.in

६२ ऋतुराज सोसायटी, पुणे-सातारा रोड, भापकर पेट्रोल पंपा समोर, सिटी प्राईडच्या पुढची लेन, पुणे ४११०३७.
☎ : ०२० - २४२१५५८३, मो. : ८२६२०५६४८०
मोबाईल : संजय ९८२२०८६९९७, सुनंदा ९४२३५६२९९१

❖ संस्थापक ❖
स्व. श्री. कांतीलालजी चोरडिया

संपादक व प्रकाशक : संजय के. चोरडिया
: सौ. सुनंदा एस. चोरडिया

❖ वर्ष ५१ वे ❖ अंक ८-९ ❖ एप्रिल-मे २०२० ❖ वीर संवत २५४६ ❖ विक्रम संवत २०७६

या अंकात

	पान नं.
● वीर-त्रयोदशी : जन्म कल्याणक	३
● समण भगवान महावीर : क्रान्तिकारी सूत्रों के उद्घोषक	५
● मोक्ष के सोपान है अहिंसा	७
● अंतिम महागाथा - भाग २ : महावीर १७ : ध्यान के प्रयोग	८
● याचना करनेवाले जीवन में सफल नहीं हो सकते	११
● महावीर की उदात्त दृष्टि	१२
● विद्या स्वयं महान है	१४
● द्वादश पापस्थानक : कलह	१५
● सुखी जीवन की चाबियाँ - सद्गुण उपासना २ - कृतज्ञता, ३ - पाप-भय	१८
● कडवे प्रवचन, चिंतन	२२
● भगवान महावीर : जीवन परिचय	२३
● वक्त पर धर्म ही काम आता है	२४
● आत्म ध्यान : खंड २ - आत्म ज्ञान है, आत्म ध्यान	२५
● अनुशाशित और मर्यादित जीवन ही सार्थक जीवन	२९
● वर्तमान में समर्पक भगवान महावीर के सिध्दांत	३०
● बुढापे को सुखी कैसे बनाये	३१
● ऐसी हुई जब गुरु कृपा - कर्तव्य पालन में आगे रहणो	३२
● जागृत विचार	३३
● मृत्यु को महोत्सव बनाएँ - मृत्यु की मृत्य	३३
● स्वास्थ्य और जैन धर्म - १	३४
● महापुरुष वही जो समस्याओं पर विजय प्राप्त करे	३९
● जनगणना २०२१ - जागो जैन जागो	४०
● बच्चों का भविष्य आपके हाथ	४२
● विश्वकल्याण प्रतिष्ठान, पुणे	४३
● देहदान - जन जागृती	४३
● क्रोध	४५
● हास्य जागृति	४५
● भारतातील विक्रमी महिलांची नावे	४७
● माझा जन्म	४८
● अक्षय है अक्षय तृतीया	४८
● अलग हो अतृप्ति से	४९

जैन जागृति मासिकाचे वर्गणी दर ❖ एका वर्षात तीन मोठ्या अंकासहित

पंचवार्षिक	रु. २२००	त्रिवार्षिक	रु. १३५०	वार्षिक	रु. ५००

या अंकाची किंमत १०० रुपये.

- www.jainjagruti.in
- www.facebook.com/jainjagrutimagazine

महाराष्ट्रातील जास्तीत जास्त जैन समाजापर्यंत पोहचण्याचा
सर्वांत खात्रीशीर, सर्वांत सोपा व सर्वांत स्वस्त मार्ग...

जैन जागृति – जाहिराती साठी संपर्क करा.

सुसंस्कार व सदाचाराचा पुरस्कार करणाऱ्या 'जैन जागृति' मासिकाचे वर्गणीदार व्हा !

- वीतराग वाणी, आचार्य, साधू, साध्वी यांचे लेख, धार्मिक, सामाजिक व शैक्षणिक लेख, धार्मिक कथा, बोधकथा, ऐतिहासिक पुरुषांचे जीवन चरित्र, तीर्थक्षेत्र परिचय, समाज प्रबोधन लेखमाला, दीपावली पूजन विधी व मुहूर्त, आरोग्य व गृहोपयोगी लेख, विविध बातम्या इ. साहित्य जैन जागृतित प्रकाशित केले जाते.
- आपण स्वत: जैन जागृतिचे ग्राहक बना व आपले नातेवाईक, मित्र, व्यापारी बंधू इत्यादींना वर्गणीदार नसतील तर त्यांना वर्गणीदार होण्यास सांगा. • 'जैन जागृति' मासिकाची वर्गणी भरून इतरांना भेट पाठवा.

जैन जागृति वर्गणी व जाहिरात – रोख/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट/AT PAR चेक/ पुणे चेकने / RTGS / SBI Online / Jain Jagruti Website इत्यादी द्वारा पाठवावी.

BANK ACCOUNT DETAILS - A/C Name : JAIN JAGRUTI
Bank : STATE BANK OF INDIA **Branch : Market Yard, Pune 37.**
Current A/c No. : 10521020146 **IFS Code : SBIN0006117**

'जैन जागृति' हे मासिक मालक, मुद्रक व प्रकाशक एस. के. चोरडिया यांनी प्रकाश ऑफसेट, शॉप नं. १२-१३, पर्वती टॉवर्स, पुणे – ४११००९ येथे छापून ६२ बी, ऋतुराज सोसायटी, पुणे-सातारा रोड, पुणे – ४११ ०३७ येथे प्रसिध्द केले. संपादक – एस. के. चोरडिया

"Jain Jagruti" monthly magazine is owned, printed & published by S. K. Chordia, Printed at Prakash Offset, Shop No. 12-13, Parvati Towers, Pune 411009. Published at 62-B, Ruturaj Society, Pune - Satara Road, Pune - 411 037. Editor - S. K. Chordia

टिप : या अंकात प्रसिध्द झालेल्या मताशी संपादक सहमत असतीलच असे नाही. जैन जागृति संबंधित कोणत्याही कायदेशीर कारवाईसाठी पुणे न्यायलय क्षेत्र ग्राह्य धरले जाईल.

टिप : जैन जागृति अंकात प्रकाशित लेख, बातम्या, जाहिरातीचे सर्वाधिकार सुरक्षीत आहेत.

वीर-त्रयोदशी : जन्म कल्याणक

लेखक : उपाध्याय अमरमुनि

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, यह वह त्रयोदशी है जो ढाई हजार वर्षों से एक मशाल की तरह जगमगाती आ रही है । धरती पर अनेक क्रान्तियाँ आयी और बिखर गयी, अनेक सिंहासन खड़े हुए और मिट्टी में मिल गए। अनेक साम्राज्य निर्मित हुए और बिखर गये । किन्तु यह इतिहास की महत्त्वपूर्ण स्मृति, यह वीर त्रयोदशी लाखों-लाख भक्तों के द्वारा जन्म कल्याणक पर्व के रुप में महत्त्व प्राप्त करती आ रही है । आज जयन्ती शब्द चल रहा है, प्राचीनकाल का शब्द है कल्याणक । जन्म कल्याणक । चैत्रशुक्ला त्रयोदशी की आधी रात एक सूरज का उदय हुआ था । प्रकृति का सूर्य प्रभात में उदित होता है । लेकिन यह सूर्य आधी रात में उदित हुआ। प्रकृति के सूर्यकिरणों की तो सीमा है, उसके समय की भी सीमा है कि यह दिन में प्रकाश करता है । उसके पीछे रात चक्कर काटती है । सूरज डूबता है और अंधेरा छा जाता है । प्रकृति के सूरज को तो राहु ग्रास लेता है । लेकिन यह सूरज ऐसा सूरज है कि जिसकी कोई तुलना नहीं है –

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्य:,
स्पष्टी करोषि सहसा युगपज्जगन्ती ।
नाम्भोधरोदर निरुध्द महाप्रभाव:,
सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ।।

हे प्रभु ! तू वह सूरज है जो न कभी अस्त होता है और न जिसका पीछा कभी रात करती है तथा न ही कभी राहु से ग्रस्त होता है ।

ऐसा यह सूरज, ऐसा यह प्रकाश धरती पर उतरा था । जिसने युग को प्रकाश की यात्रा के लिए प्रेरित किया था । कहा था उन्होंने कि इस प्रकाश से कोई भी आत्मा खाली नहीं है । हर आत्मा में यह ज्योति विद्यमान है । आवरण आ गया है बस उस आवरण को हटाने की आवश्यकता है । आवरण हटते ही ज्योति जगमगा उठेगी ।

अनेक परम्पराओं में इस महाप्रकाश का केन्द्रीकरण कर दिया गया है कि एक ईश्वर है, कोई दूसरा ईश्वर हो नहीं सकता । एक परमात्मा है बाकी सारी आत्मा है, कोई परमात्मा हो नहीं सकता । और वह ईश्वर, वह परमात्मा किसी का सातवें आसमान पर है तो किसी का गोलोक में । कोई परम्परा कहती है सागर में तो कोई कहती है कैलाश पर ।

भगवान महावीर कहते हैं – तेरा ईश्वर तेरे अन्दर। हर आत्मा में परमात्मा की ज्योति जगमगा रही है । तुम्हें दीन-हीन बनकर ईश्वर की उपासना में गिड़गिड़ाने की आवश्यकता नहीं है । ईश्वरत्व की उपासना करो । अर्थात् स्वरुप की उपासना करों । अपने स्वयं के भीतर रहे परमात्मा को जगाओ । इस प्रकार उन्होंने हर व्यक्ति के अन्दर के साहस को जगाया । उन्होंने कहा तुम स्वयं महावीर हो, तुम स्वयं परमात्मा हो । चाहे किसी भी जाति, पंथ, वर्ण, वर्ग का हो, क्षुद्र से क्षुद्र पददलित भी हो, उसकी आत्मा में भी परमात्मा ज्योति विराजमान है । यह महत्त्वपूर्ण घोषणा है भगवान महावीर की ।

तीर्थंकर महावीर ने परम्पराओं, सम्प्रदायों और मान्यताओं में बिखर कर खण्ड-खण्ड हुए सत्य को एक करके कहा 'एगा मनुस्स जाई' । मनुष्य जाती एक है और धर्म भी एक है – 'दया धम्मो' – दया, करुणा, मैत्री जिसे कबीर की भाषा में प्रेम कहते हैं । प्रेम का विस्तार ही धर्म है । प्रत्येक मनुष्य का धर्म दया और प्रेम है ।

प्रत्येक पंथ, परम्परा का कहना था कि हमारा सत्य ही अन्तिम सत्य है, दूसरे सब मिथ्या हैं । इन सारे पंथों सम्प्रदायों में बटे सत्य को जोड़कर तीर्थंकर महावीर ने उसे महासत्य का रुप दिया । उन्होंने कहा कि संसार में अन्तिम कोई चीज नहीं है, हर चीज अनन्त है। केवलज्ञान को अन्तिमज्ञान कहते हैं, गलत है । केवलज्ञान तो अनन्त है । अनन्त तो अन्त को तोड़ता

है । सीमा को, क्षुद्रता को तोड़ता है । ज्ञान भी अनन्त, दर्शन भी अनन्त, शक्ति भी अनन्त, सुख भी अनन्त, सब कुछ अनन्त है । महावीर की दृष्टि में अन्तिम सत्य जैसी कोई वस्तु नहीं है । इस प्रकार महावीर का अनेकान्त मनुष्य के बिखरे विचारों को जोड़ने का काम करता है । मनुष्य के बिखरे, टूटे दिलों को जोड़ता है । धर्म के नाम पर, मान्यताओं के नाम पर जो द्वन्द्व खड़े हैं, उनका समाधान प्रस्तुत करता है । महावीर का अनेकान्त कहता है कि प्रत्येक का सत्य महासत्य का अंश है, अनन्तसत्य के सत्यांश हैं । उनका अनेकान्त परस्पर के विग्रह कलह और वैर मिटाकर, इन्सान-इन्सान के बीच खड़ी हुई दीवारों को तोड़कर समग्र मानव जाति को एक करता है ।

भगवान महावीर से जब पूछा कि मुक्ति किस स्थान से प्राप्त होगी ? तब उन्होंने कहा जहाँ मनुष्य खड़ा है वहीं से वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है । जितना बड़ा मानवलोक, मनुष्य क्षेत्र है, उतनी ही बड़ी सिध्दशिला है । पैंतालिस योजन मनुष्य क्षेत्र है और पैतालिस योजन का ही मुक्ति स्थान है । कोई भी मनुष्य कहीं से भी बिना किसी पंथ सम्प्रदाय, देश, जाति और वर्ण के भेद के मुक्ति प्राप्त कर सकता है । इतना विराट महावीर का दर्शन है ।

और लोगों ने तो महावीर को समझा या नहीं अलग बात है, लेकिन जो जैन अनुयायी होने के दावेदार हैं उन्होंने भी महावीर के दर्शन को नहीं समझा है । बस इतनी दूर तक ही वे जा पाये कि महावीर राजा के बेटे थे, माता उनकी त्रिशला रानी और पिता सिध्दार्थ थे । और महावीर ने राज्य छोड़ दिया, दीक्षा ग्रहण कर केवलज्ञान पाया तथा उस परम ज्ञान की प्राप्ति का पथ बताया इसका मतलब है कि हमारी परिक्रमा केवल बाहर-बाहर है । उनकी अन्तरात्मा का दर्शन हमने ठीक तरह से नहीं किया है । अगर किया होता तो हम दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि के झगड़ों में नहीं उलझते । हम अपनों के झगड़ों को ही नहीं सुलझा पा रहे हैं तो विश्वशान्ति की बात क्या कर सकेंगे ? विडम्बना यह भी है कि दिगम्बरों में कई दिगम्बर हैं और श्वेताम्बरों में भी कई श्वेताम्बर हैं ।

स्याद्वाद के सिध्दान्त के आधार पर तीर्थंकर महावीर ने जो अखण्ड सत्य की बात कहीं उसे खुद उनके अनुयायी ही नहीं समझ पाये हैं । यह एक चुनौती है । जैन अनुयायियों के लिए । आज भी हम छोटी-छोटी बातों में उलझते जा रहे हैं जिनका कोई किसी भी दृष्टि से तुक नहीं है । मूर्ति महावीर की पूजेंगे दोनों ही, लेकिन दिगम्बर व्यक्ति दिगम्बर मूर्ति ही पूजेगा और श्वेताम्बर व्यक्ति श्वेताम्बर मूर्ति को ही पूजेगा । उसी मूर्ति को लेकर श्वेताम्बर-दिगम्बर एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं ।

मुझे कहना है हमने धर्म को बहुत जटिल बना दिया है । महावीर ने तो समस्त जटिलताओं को तोड़कर सरलता स्थापित की थी और हम उस शान्ति सिध्दान्त को ही चूर-चूर करते जा रहे हैं ।

यह वीर त्रयोदशी बार-बार आती है, प्रत्येक वर्ष आती है । क्यों आती है ? कभी सोचा है ? यह संदेश लेकर आती है जागरण का, यह आव्हान करती है - जागो, जैनों ! जागो । और जागकर तीर्थंकर महावीर के वैचारिक दृष्टिकोण को समझो । जब मनुष्य उनकी अनेकान्त दृष्टि का समझेगा और अपनाएगा तभी उसके मन का अंधेरा दूर होगा । तब वह भी और सम्पूर्ण मनुष्य जाति भी सत्य के प्रकाश में जगमगा उठेगी । ●

श्री गौतम लब्धि (निधि) कलश

प्रेरणा : उपाध्याय **प. पू. श्री. प्रवीणऋषिजी म.सा.**

गौतम निधि मार्फत गरजू साधार्मिक बांधवाना शैक्षणिक, वैद्यकीय सेवा व विकास कार्यासाठी मदत केली जाते.

संपर्क : गौतम लब्धि फाऊंडेशन, पुणे

मोबा.: ९८२२२८८५३८, ९८२२०७८६५७

समण भगवान महावीर : क्रान्तिकारी सूत्रों के उद्घोषक

लेखिका : आगमवेत्ता साध्वी वैभवश्री 'आत्मा'

स्वयं के भीतर क्रान्ति घटित हुई हो तो बाहर भी वह झलकती ही है । जब भीतर होश का दिया जग जाए तो बाहरी अँधेरा भी तिरोहित हो ही जाता है । अब अँधेरे में उजाला हो गया तो कोई भला लाठी या किसी भी अन्य पदार्थ का सहारा क्यों कर चाहेगा ? अँधेरे का अस्तित्व हो तो ही भय का होना संभव है, प्रकाशवान को भय कैसा ? समण भगवान महावीर भीतर से प्रकाशित हुए, अमावस्या का अन्त हुआ, अन्तर्ज्ञान निरावरित हुआ । उन्हें अपने भीतर समष्टि का संगीत सुनाई देने लगा, तब पूर्व नियतिवश मुख से वाणी खिरी, देशना प्रस्फुटित हुई और तब युगों-युगों को क्रान्त दृष्टि प्राप्त हुई । समयनाथ होने की प्रेरणा मिली ।

हर तीर्थंकर अपने समय का क्रान्तिकारी उद्घोषक होता ही है क्योंकि वह किसी भी पूर्व तीर्थंकर की राह का अनुगमक; थ्वससवूमतध्द नहीं होता । वह अपने सत्य को आप्त होकर जीता है, इसीलिए नूतनता व मौलिकता का प्रवाह होता है । यही कारण है कि हर तीर्थंकर 'आदिकर' कहलाता है ।

'णमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं आइगराणं' कह कर उनकी स्तुति की जाती है । आदिकर यानि प्रारम्भकर्त्ता। यद्यपि वह कोई नए धर्म का सूत्रपात कर रहा हो, ऐसा नहीं है किन्तु वह शाश्वत धर्म को नई अभिव्यक्ति जरुर देता है, जो तात्कालिक सभ्यता संस्कृति के लिए युग की माँग होती है ।

आईए, जानें समण निर्ग्रन्थ महावीर के कुछ क्रान्तिकारी सूत्रों को, जिनकी अभिव्यक्तियों ने उस युग के मानव की सुप्त चेतना को झंकृत कर डाला और भटक रही मानवता को दिशा निर्देशित किया –

१) सोऽम् –

सोऽम् का मंत्र फूँककर उन्होंने मानव को किसी का भी अंध अनुयायी बनने से मना किया । उनका उद्घोष रहा कि आत्मा ही परमात्मा है ।

'मैं वही हूँ । (सः + अहम्)'

आपको किसी से डरना नहीं, दबना नहीं, ललचाना नहीं । आप ही सर्व समर्थ हो । अपनी योग्यताओं पर शंका मत करो । किसी भी दैविक या मानवीय सत्ता को सर्वोच्च मानकर मत चलो । न किसी को अपने से ऊपर रखकर स्वयं गुलाम बनो, न ही किसी को हीन मानकर उसे गुलाम बनाओ ।

गुलामी सर्वथा हेय है । आप जो भावोगे वही होगा । अतः खुद को दीन-हीन, कमज़ोर, अनुयायी मत मानो । यहाँ एक बात और समझ लें कि अक्सर जैन लोग स्वयं को भगवान् महावीर का अनुयायी कहते हैं किन्तु ऐसा भगवान् महावीर ने कभी नहीं कहा । वे किसी को अपना अनुयायी; विससवूमतध्द बनने की प्रेरणा नहीं देते थे । वे कहते कि स्वयं अपना सत्य खोजो । स्वयं को जानो । स्वयं को जगाओ । आप ही अपने लोग हो । आप ही अपना संसार हो । अतः अनुयायी नहीं, आयायी बनो अर्थात् आत्मज्ञानी बनो ।

तात्कालिक युग सत्ता प्राप्ति के नशे में चूर था और एक-दूसरे से भयभीत भी । तब भगवान् महावीर ने 'सोऽम्' का मंत्र दिया और सभी को निःशंक जीने की प्रेरणा दी । दूसरा सूत्र 'अशरण भाव' का दिया ।

२) अशरण सूत्र –

यह समण भगवान महावीर की क्रान्तिकारी उद्घोषणा रही कि-कोई तुम्हारा शरणा नहीं है, न ही तुम किसी का शरणा बन सकते हो, अतः पर से अपेक्षाएँ पालना बंद करो ।

नालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा
तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।।

कोई तुम्हारा त्राता, रक्षक, शरणा देने वाला नहीं है । तुम्हारा सुख, तुम्हारी सुरक्षा तुम्हें कोई अन्य कैसे दें सकता है जबकि वह स्वयं भी तुम्हारी ही तरह किसी अन्य से सुरक्षा व सुख चाहता है । अत: अपनी इच्छाओं व वासनाओं को विराम दो । उसके यथार्थ स्वरुप को समझो, परिजाणामि करो । नि:कांक्ष बनो । कामना ही दासता का कारण है । कामनाएँ ही पर से सुख प्राप्ति की लालसा में शरणा तलाशती है । जो स्वयं असुरक्षित है, वह तुम्हें सुरक्षा की गारंटी कैसे दे सकता है ? आज बैंकों का फेल हो जाना, बैंकों को भी लूट लिया जाना, बैंक से प्राप्त धनराशि में घोटाले होना, सरकारों का फेल हो जाना, पुलिस विभाग में भी व्याप्त भय व आतंक - ये स्पष्ट दिखलाता है कि यहाँ बाहर कोई शरणा नहीं है । जिस धन में शरणा ढूँढते हो, वह कभी भी डूब सकता है, जिसपद में शरणा ढँढते हो, वह भी कभी भी छिन सकता है । जिन रिश्तों-नातों में शरणा ढूँढते हो, वे भी टूट, रुठ या छूट सकते हैं । अत: इस असंस्कृत जीवन में किसी अन्य से सुरक्षा मत चाहो। स्वयं को कांक्षामुक्त करो व नि:शंक वर्तना कर अपना शरणा आप बनो । जिसे अनावश्यक चाहतें; क्मेपतमेध्द नहीं, उसे न लोभ, न भय, न तनाव, न बुरा हाल । खुद इच्छाओं को, उसकी व्यर्थता को परिजाणामि करते जाओ, जीवन में किसी पर निर्भर रहने की जरुरत ही नहीं बचेगी ।

प्रभु महवीर के दो महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रों के बाद हम उनकी सामाजिक क्रान्ति के भी दो सूत्रों को अवश्य जानें -

१) धर्मनिरपेक्षता -

धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य किसी भी प्रकार की धार्मिक प्रणाली का एकांत समर्थन अथवा विरोध का नहीं होना है । समण महावीर ने आत्मसत्य को उजागर करने की बात कही, किसी भी पंथ-परम्परा का पोषक बनने की बात नहीं कही । आप किसी धर्म परंपरा में जन्म लेते हो, इसलिए उसके प्रति समर्थन या लगाव रखते हो तथा उससे भिन्न के प्रति अलगाव या भेदभाव रखते हो तो आप धर्म निरपेक्ष नहीं हुए । जैसे श्वेतांबर जैन के घर में जन्मे, सो श्वेतांबरी हुए, इसलिए दिगंबरों से, वैष्णवों से या मुस्लिमों से परायापन या अलगाव रखते हो तो आप वस्तुत: धर्म के स्वरुप से अनभिज्ञ हो। धर्म की सही समझ विकसित नहीं कर पाए हो क्योंकि धर्म स्वाभाविक जीने का नाम है और पक्ष-विपक्ष का आग्रह या पकड़ इंसान को गैर स्वाभाविक बना देती है ।

अत: धर्म को जीओ; प्रथाओं को नहीं ।

प्रथाओं अर्थात् रीति-रिवाजों में; ज्तंकपजपवदेध्द समझ का स्थान नहीं होता, प्राय: लगावपरक मूर्च्छा होती है, जो इंसानों को गुटों में, दलों में बाँटती है । समण महावीर ने अनेकांत सत्य का उद्घाटन किया और कहा कि सबकी समझ का स्तर, अभिव्यक्ति का स्तर व अनुरक्ति (आसक्ति-मोह) का विषय भिन्न-भिन्न है, अत: किसी से लगाव व द्वेष मत रखो । किसी को सच्चा या झूठा मत मानो । स्वयं सभी धर्मों का आदर करते हुए आत्मधर्म में जीओ । धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्मों का अभाव नहीं है वरन् सभी धर्मों के प्रति सद्भाव का होना है और किसी भी धर्म प्रणाली की पकड़ को नहीं रखना है ।

२) जातिप्रथा उन्मूलन -

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।
उत्तरा. ३३/२५ वाँ अध्याय

समण महावीर की क्रान्तिकारी उद्घोषणा थी कि इंसान जन्म स्थान या जाति से नहीं कर्म से पहचाना जाए । कर्म से ही ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की पहचान हो; न कि जन्म से । अत: किसी को उसके पूर्व से, अतीत से, उत्पत्ति स्थान से मत निर्धारित करो । स्वयं कर्म द्वारा अपने भीतर से जो, चाहो वो प्रगट करो।

आप चाहो तो ब्राम्हण बनो, चाहो तो वैश्य । चाहो तो क्षत्रिय अथवा शुद्र ।

जो मात्र देहगत लालसाओं से आबध्द ही बने रहोगे तो शुद्र ही रह जाओगे । ब्रम्हज्ञान, आत्मज्ञान को उपलब्ध बनोगे तो ही ब्राम्हण हो सकोगे । तुम में विकास की अनंत संभावनाएँ है । अपनी संभावनाओं च्वजमदजपंसध्द का सदुपयोग करो । खुद की पुरुषार्थ क्षमता को जगाओ और अपने क्षात्रत्व अथवा ब्राम्हणत्व को पहचानो । जो ब्रम्हमय जीए, आत्मज्ञान को प्रगट करे, वह सच्चा ब्राम्हण है ।

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ।।

अर्थात् मुंडन मात्र से कोई समण नहीं हो जाता, ॐकार का जाप करने मात्र से कोई ब्राम्हण नहीं हो जाता । मुनी की पहचान उसका अरण्यवासी होना नहीं है, न ही कुश का वस्त्र धारण करने से कोई तापस होता है । असली समण–ब्राम्हण तो वह है –

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
माणेण य मुणी होई, तवेणं होई तावसो ।।

जो समतामय जीए वह समण है । जो ब्रम्हचर्य में जीए, वह ब्राम्हण है तथा जो मौनपूर्वक जीए, वह मुनि है । जो तपोमय है, वह तापस है । अत: जाति–वर्ण से खुद को या किसी अन्य को न आँको, न बाँधो, न स्वयं बंधो । अपने भीतर गुणों को प्रगट करो, आपके रचयिता आप स्वयं हैं । अत: अपना श्रेष्ठ स्वरुप उद्घाटित करो।

इस प्रकार समण भगवान् महावीर ने तात्कालिक समाज को जाति–वर्ण की पारंपरिक सोच के आग्रह से मुक्त करने हित क्रान्त सूत्र दिए । इसके सिवाय पशुबलि जो धर्म समझी जाती थी व यज्ञ के लिए होती थी, उसका भी खण्डन किया । स्त्री को सम्मान, शिक्षा–दीक्षा व स्वतंत्रता का अधिकार दिलाया । राज्यवाद व पूँजीवाद को बढ़ावा न देकर समाजवाद की महत्ता बताई । प्रत्येक गृहस्थ को इच्छाओं की मर्यादा करने का सुन्दर संदेश दिया । पूणिया श्रावक व आनन्द आदि समणोपासक इसके ज्वलंत उदाहरण है ।

मानव सेवा की व प्रकृति संरक्षण की महत्ता जनमानस में जगाई । इस हेतु षट्काय संयम की प्ररुपणा की । अतिथि संविभाग व्रत का सुंदर अभियान दिया । प्रत्येक गृहस्थ को मर्यादित व विवेकपूर्ण जीने की देशना देकर युगों–युगों का मार्गदर्शन किया ।

समण भगवान महावीर के क्रन्तिकारी सूत्र तो अनेकों है, किन्तु यहाँ हमने मात्र दो–दो सूत्रों को ही संक्षिप्त में रखा । शेष जानकारी फिर किसी आलेख में देने का भाव है । ऐसे क्रान्तदृष्टा, समयजेता, आत्मनाथ समण भगवान् महावीर स्वामी को अहरह प्रणात । सतत् समर्पण । समण भगवान महावीर के जन्म कल्याणक की समस्त श्री संघ को बधाई । ●

मोक्ष का सोपान है अहिंसा

प्रेषक : महेश नाहटा, नगरी

धर्म का प्राण है – अहिंसा
दया, करुणा, प्रेम का पैगाम है – अहिंसा
अभयदान का महामंत्र है – अहिंसा
जीवनदान की महायात्रा है – अहिंसा
अनुकम्पा की ज्योत है – अहिंसा
प्राणी मात्र की मुस्कान है – अहिंसा
जीवत्व की पहचान है – अहिंसा
सहअस्तित्व की पुकार है – अहिंसा
मैत्री भाव की पताका है – अहिंसा
प्राणी मात्र की संवेदना है – अहिंसा
पर पीडा की अनुभूति है – अहिंसा
संताप को हरने की जड़ी बुटी है – अहिंसा
सात्विक विचार आचार का नाम है – अहिंसा
चेतना, विवेकपूर्वक जीवन शैली का नाम है – अहिंसा
सारे व्रतों का सार है – अहिंसा
जैनों को मिला उपहार है – अहिंसा
सारी समस्याओं का समाधान है – अहिंसा
मोक्ष का सोपान है – अहिंसा ●

अंतिम महागाथा

लेखक : प्रबुध्द विचारक पू. श्री. आदर्शऋषिजी म.सा.

(क्रमशः)

भाग दो – महावीर

१७ : ध्यान के प्रयोग

मनुष्य अकेला आता है, अकेला जाता है । इस आने-जाने के बीच वह अकेला नहीं रहता । उसकी आवश्यकता, इच्छा, आकांक्षा, वासना, भावना का जन्म होता है । इसकी भूख निरंतर बढ़ती जाती है । इसकी पूर्ति दूसरे के बिना पूर्ण नहीं होती । यह 'दूसरा' ही समाज होता है ।

मनुष्य के मन के गहरे वन में आदिम भय किसी पंछी की तरह दुबका हुआ है । अज्ञात और अज्ञान के कारण, भ्रमवश वह मनुष्य को बार-बार जकड लेता है। उसके संपूर्ण अस्तित्व पर 'भय' भूत की तरह छाया रहता है । जो उसे पंगु कमजोर बना देता है । इसलिए उसे अकेलापन हमेशा डराता है । अकेले होने की कल्पना से ही घबराहट होती है । सारा अस्तित्व अकेलेपन की कल्पना से काँप उठता है । भय को दबाने के लिए ही भीड खोजता है । भीड में रहकर स्वयं को भूला देनेवालों का ही समाज होता है ।

एक वे होते है, जो अपने स्वयं के अस्तित्व को भीड में खो देते है । दूसरे वे होते है, जो भीड में रहकर भी उसका हिस्सा नहीं बनते । पहले श्रेणी के लोग भीड न हो तो पगला जाते है, घबरा जाते है । दूसरे वर्ग के भीड हो न हो, उनके भीतर में कोई अंतर नहीं पडता । वे स्वयं में स्वस्थ रहते है ।

अकेले रहना वीरता का लक्षण है । मनुष्य के धैर्य, दृढता की अकेले में ही पूर्ण कसौटी होती है । फिर चाहे वह वन में हो या जन में हो । आत्मसाधना, सत्य की खोज के लिए अकेले ही चलना होता है तभी आत्म साक्षात्कार होता है । अकेलेपन में खोना होता है, जो समूह से मिलता है । समूह से जो मिलता है वह खोखला, व्यर्थ, अर्थहीन होता है । भीड से जो पाया वह आज है, कल नहीं है । भीड भुलावा है । भीड में उलझना स्वयं को छलना और भूलना है । जो अकेले में होते है, अपने में होते है उनके अस्तित्व को प्रकृति अखूट - अक्षय खजाने से भर देती है । यह अध्यात्म जगत का गूढ रहस्य है ।

महावीर अस्थिकग्राम से वर्षावास पूरा होते ही अकेले चले जा रहे है । उत्पल के साथ गाववालों ने भी आग्रह भरी प्रार्थना की कि, ''आप यहाँ रहकर साधना कीजिए । इस गाँव पर आपने जो उपकार किया है, हम वह कभी भूल नहीं सकते ।''

महावीर कैसे रुक जाते । उन्हें तो आत्मसाधना के लिए अज्ञात भूमि पुकार रही है । वे कर्म उन्हें आमंत्रण दे रहे है । जो उनसे मुक्त होना चाहते है । बिना कुछ कहे, पूछे एक दिन महावीर अस्थिकग्राम से प्रभात के साथ ही चल दिये ।

आकाश दूर क्षितिज तक एकदम निरभ्र नीला था। नीलिमा में लिपटा आकाश सूर्य की रश्मियों से चमक रहा है । शिशिरऋतु में नहाई हुई प्रकृति से ओसकण झर रहे है । सूर्यकिरणों के प्रभाव से तृणाग्रपर झरते हुये ओसबिंदू मोती की तरह चमक रहे है । आभास क्षणभंगुर होता है । ओसबिंदूओं में नहाए हुये पुष्प, पत्ते, डालियाँ ऐसे दिखाई दे रहे है जैसे इन सभी ने आभूषण पहन रखे है ।

महावीर अपने पथ पर चले जा रहे है । न कोई

शीघ्रता, न कोई अस्थिरता, न कुछ खाना है, न कुछ पीना है, न किसी से मिलना है न कही पहुँचना है । उनका मार्ग अंतर में है, स्व से मिलना है । बाहर में चलना इसलिए कि चलकर ही निर्ग्रंथ रहा जा सकता है । चलना इसलिए कि मुझसे भी कोई बंधे नहीं । बाहर में चलकर भीतर में जाना आत्मसिध्दि का मार्ग है । बाहर चलकर निरंतर बाहर की तरफ ही जाना लोकप्रसिध्दि का मार्ग है । भटकना उसकी अंतिम परिणति है ।

महावीर चलते वक्त बहुत दूर तक नहीं देखते। अपनी दृष्टि को अपने पैरों से कुछ हाथ दूर रखकर चलते। जिससे चलना भी सुगम हो और कोई जीव भी पाँव के नीचे न आ जाये । महावीर की ये विवेक दृष्टि उनके तत्त्व चिंतन-मंथन में भी उतर रही है । वे चलते-चलते एक निर्जन स्थान पर ध्यान में लीन हो गये ।

ध्यान उनके जीवन का अंग है । ध्यान ही उनका जीवन है यह कहना अधिक योग्य है । उनके लिये ध्यान क्या है । आत्मतत्त्व को जानने का विज्ञान ही ध्यान है। इसी विधि से वे ध्यान के क्रम में आगे बढते है । ध्यान आँख बंदकर बैठना या खडा रहना ऐसी निष्क्रिय पध्दति नहीं है । महावीर प्रबल पुरुषार्थ से ध्यान की परम स्थिति पर पहुँचते है । क्योंकि वे ध्यान के माध्यम से अथक प्रयास कर जन्मोंजन्म के कर्मों को तोडना चाहते है ।

महावीर चिंतन करते है कि जागृत रहकर आत्मचेतना को किसी एक बिंदू पर स्थिर करके ध्यान करुँ । किंतु पहले कुछ विधि है वह नहीं करुँगा तो प्रमाद आ सकता है, जो ध्यान में बाधक है । वे सोचते है प्रमाद का कारण क्या है ? भूख, निद्रा, विषयरस का स्मरण और प्राप्ति में सुख-अप्राप्ति में शोक ये प्रमाद के कारण है । हर जीव इस अशुभ ध्यान में जीता है और कर्मों में वृध्दि करता है । अत: मुझे प्रमाद को त्यागकर सतत जागृत रहना है । पहले जातिस्मरण ज्ञान की आवश्यकता है । मैं कई जन्मों से भटक रहा हूँ । इस जन्म-मृत्यु के चक्र में दुख ही भोगता रहा, सुख पलभर का और दुख मनभर का मिला । जिनसे दुख पाया, उन कर्मोंका स्वरुप, उनके परिणाम को समझना आवश्यक है । उसके बाद स्व-स्वरुप का, आत्मचेतना का स्मरण ही ध्यान की ओर ले जाता है ।

महावीर अनशन, कायोत्सर्ग और ध्यान इन तीन तप के माध्यम से आत्मसाधना के मार्ग पर चलते है । वे निरंतर मन-वचन का संवर सहजरुप से करते । इसलिए प्रमाद उनके पास फटकता भी नहीं ।

आचार्य भद्रबाहु ने कहा है कि, ''ऐसे ध्यान से शरीर और बुध्दि की जडता नष्ट होती है ।''

महावीर अधिकतर खडे रहकर ही ध्यान करते । हाथों को घुटनों की ओर सीधा छोड देते । पलके सहजरुप से झुकी हुई सुंदर दिखाई देती, किसी को वे आधी बंद, किसी को आधी खुली दिखाई देती । कभी नासाग्रपर कभी भ्रृकुटीपर दृष्टि टिकाते हुये घंटों ध्यान करते । कभी निरभ्र नीले आकाश को देखते हुये ध्यान करते । कभी गिरिशिखर को अपलक निहारते, कभी नदी की बहती धारा को ।

जिस लक्ष्य पर भी ध्यान करते वह मुख्य हो जाता, बाकी सब गौण । धीरे-धीरे सारी चेतना को समेटकर अंतर में लौट जाते । जहाँ दिक्, काल का कोई अस्तित्व नहीं, शरीर से पार सिर्फ आत्मचेतना ही रह जाती । ध्यान की इन बाह्य विधियों के साथ वे अंतर की गहराई में ध्यान के कुछ और प्रयोग करते । जो पारदर्शी चेतना के बिना संभव नहीं, वे अत्यंत कठिन है। पारदर्शी याने चेतना की उच्च जागृत ज्ञान अवस्था। जैसे एक ध्यान की विधि से वे जातिस्मरण ज्ञान का प्रयोग करते । किसी जन्म की स्मृतियों को स्मरण में लाकर, उस घटना को स्मृतिपटल पर स्पष्ट रुप से चित्र की भाँति देखते । फिर आत्मशक्ति के उपयोग से उस जन्म के कर्मों को प्रत्यक्ष उदय में ले आते । वे कर्म उनकी कठोर तप-ध्यान की शक्ति से टूट जाते । पर कभी वे देखते कि कर्म की कई घाटियाँ है, उनका समय आने पर ही उनसे पार जाया जा सकता है, तभी

केवलज्ञान का सूर्योदय होगा ।

कभी वे पुद्गल, पदार्थ के अंतिम अणु-परमाणु पर ध्यान करते । यह ज्ञानदृष्टि की वह अवस्था है जिसमें पदार्थ का कण-कण दिखाई देता है । पदार्थ के आर-पार देखने की क्षमता, उसके भीतर में निरंतर होनेवाले परिवर्तन तुरंत पकड में आते है । इस एक परमाणु ध्यान के प्रयोग से उनके आसपास उर्जा का ऐसा प्रकाशमय वलय तैयार हो जाता कि कोई भी उनके निकट नहीं जा सकता । पशु देखकर दूर ही ठहर जाते। मानव देखता तो आश्चर्य में पड जाता । पर मनुष्य के पास वह शक्ति नहीं जो पशु के पास होती है । वे तुरंत जान जाते कि ये अन्य से भिन्न है । वे दूर से ही निकल जाते ।

कभी वे आत्मगुण में से किसी एक गुण का ध्यान करते, ये आत्म-सन्मुख होने की प्रक्रिया है । ध्यान में ये सबसे मुख्य है । यह ध्यान का अंतिम उद्देश्य है । वे जितनी भी ध्यान की विधियाँ करते लक्ष्य आत्मचेतना ही रहता । आत्मसिध्दि ही पाना है । बाकी सिध्दियाँ प्रसिध्दियाँ कचरा है । नादान, मूढ कचरा चाहता है । बोये हुये धान के पीछे कचरा, भूसा आ ही जाता पर धान तो है नहीं, ऐसे लोगों को भूसा भी नहीं मिलता। ध्यान साधना आत्मसिध्दि के लिए होती है, तो उसमें से निश्चित अमूल्य निधि प्राप्त होती है । बाकी सब ध्यान-साधना आत्मछलना के सिवा कुछ नहीं । ध्यान-साधना के माध्यम से जो अनुभूतियाँ या कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती है वे आभास है, दिखावा है । एक मिथ्या-भ्रमणा, छलना के अलावा कुछ भी नहीं है ।

मुक्तवसन महावीर कार्योत्सर्ग कर रहे है । कायोत्सर्ग की एक प्रक्रिया है । जिसे करने के बाद शरीर और चेतना का भेदज्ञान होता है । पदार्थ की आसक्ति, शरीर की ममता, उसकी पीडा से मुक्ति मिल जाती है । फिर काया की भूमि से ही आत्मयान अंतर की यात्रा पर उडान भरता है । शरीर एकदम स्थिर हो जाता है । फिर काया से जुडा सूक्ष्म शरीर सक्रिय होकर शरीर की सुरक्षा करता है, जो अंतर उर्जा से निर्मित होता है ।

महावीर ध्यान में है । निकट गाँव की चंचल युवतियाँ टहलाते हुये वहाँ पहुँच जाती है । युवतियाँ भटकी हुई मनमौजी है । हँसी, ठिठोली और मसखरी करना उनका स्वभाव है । महावीर के अनुपम-मनभावन रुप सौंदर्य को देख वे देखती ही रह जाती है, वे चंचल बन जाती है ।

''ओ हो ! ये कौन देवपुरुष धरती पर आये है ? ये तो कामदेव के अवतार है । क्या रुप सौंदर्य है ।'' एक सखी बोली, ''इनके कंचनवर्णी शरीर को देखो । कैसी आभा है, कैसा बलिष्ठ शरीर है । चेहरे पर क्या ही सुकुमारता है । कमलवत् नयन और कुंतलराशी कितनी आकर्षक है । अरे ! मन-मस्तिष्क को मदहोश कर दे ऐसी सुगंध कहाँ से आ रही है ? आसपास में कोई पुष्प खिला है ?'' दूसरी बोली, ''अरे! बावरी ये सुगंध कहीं इधर-उधर से नहीं इनके शरीर से ही आ रही है। पगली देख नहीं रही कि भँवरे, पतंगे, तितलियाँ इनके शरीर के पास गूंजन कर रहे है, कैसे मंडरा रहे है ।''

वे एक-दूसरे से ठिठोलियाँ करती हुई महावीर की ओर खींची चली जाती है । वे मदमस्त, बेभान युवतियाँ महावीर से प्रणव निवेदन करती है । आमंत्रण देती है, हमें स्वीकारो । यह उम्र यह देवदुर्लभ शरीर अभी तप के लिए नहीं है । तप-त्याग जो कुछ करना है बाद में करना । भोग के समय में योग से कैसे जुडे ? सुकुमारतासे तो राजकुमार, क्षत्रिय लगते हो । और योग से नाता जोडा है, यह अच्छा नहीं, नाता हमसे जोडों ।

मदमाती, मतिमारी युवतियाँ समझ नहीं पाती कि वे किससे प्रणय निवेदन कर रही है । जो जुडने, टूटने से पार जा चुका है । अचलयोगी महावीर की ओर से न कोई प्रतिसाद न कोई संकेत पाकर वे निराश, खिसियाई युवतियाँ प्रलाप करती हुई कहती है । ये जीवित तो है

ना या पुतला है ? इनमें और इस पेड में कोई फर्क नहीं है । चाहे जितना इनसे लिपटो, हिलाओं इनपर कोई असर नहीं होगा । चलो, चलते है । यह इस लोक का मनुष्य नहीं जान पडता । इस प्रकार युवतियाँ टिप्पणी करती हुई निकल जाती है । उधरसे कुछ युवक घूमते-घूमते वहाँ पहुँचते है ।

महावीर के कुंतल बालोंको देख युवा उनसे पूछते है, ''आपके बाल इतने घने, लंबे, सुंदर है उसके पीछे क्या राज है ? क्या लगाते है आप बताईये ?''

आपकी आँखें बडी-बडी है कौनसा अंजन लगाते है ? आपके शरीर से कितनी मोहक, मदमस्त गंध निकलती है । आप क्या उबटन या कोई सुगंधित द्रव्य लगाते है ? जबाब नहीं मिलता ।

अरे ! लगता है ये तो गूंगा है, बहरा है ये पाषाण है - चलो हम भी किससे पूछ रहे है जो योग कर रहे है । उनसे भोग पूछ रहे है ।

बोलते-बोलते युवक निकल जाते है ।

दुनिया की ये रीत है - वह मन, विचार आत्मा को मूल्य, महत्त्व नहीं देती जो अनश्वर है । नश्वर के पीछे मोहांध है क्या यही मनुष्य के दुख का कारण है?

हवा का झोंका आया, चला गया । इंद्रियजेता महावीर ने न कुछ देखा, न कुछ सुना । वे ध्यान के उस स्तरपर पहुँच गये थे जहाँ इंद्रियों का व्यापार, संपर्क खत्म हो गया है ।

भोग की सीमा पदार्थ तक है । योग की सीमा विराट तक, उससे आगे चेतना...! (क्रमश:) ●

याचना करने वाला जीवन में सफल नहीं हो सकता

लेखक : आचार्य श्री ज्ञानसागरजी म.सा.

भक्ति पवित्र मन से और निष्काम होनी चाहिए । जो भक्ति किसी वांछा को लिए हुए होती है, वह सच्ची भक्ति नहीं कही जा सकती । जो भक्त किसी भी प्रकार की याचना करता है, वह जीवन में सफल नहीं हो सकता तथा आत्महित नहीं कर सकता । जीवन में जो सदाचार, सत्संग तथा अच्छे कार्यों की ओर प्रेरित होता है, वही परमात्म-पद को प्राप्त कर सकता है ।

आज जो वैभव आपको दिखाई दे रहे हैं, वे सब अस्थायी हैं, वे सदा साथ रहने वाले नहीं । अत: इस शरीर से देश, धर्म और समाज के लिए ऐसे कार्य करने की ओर हर व्यक्ति को आगे बढ़ना चाहिए जो वास्तव में सभी के लिए कल्याणकारी हो । जीवन में जो मिथ्याचार और पापाचार को पाले हुए हैं, वे स्वयं के लिए दुख भरा वातावरण तैयार कर रहे हैं ।

नैतिक जीवन में विकृतियाँ नहीं होती । यह सब पाप-पुण्य का खेल है तथा इस खेल से जो छुटकारा पा लेता है, वही परमात्मा बन जाता है ।

संसार में जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग भी सुनश्चित है । किंतु ज्ञान, विवेकी और सच्चे धर्म का आश्रय लेने वाले व्यक्ति के जीवन में संयोग-वियोग का कोई महत्त्व नहीं है । वह इनके प्रति चिंतित नहीं रहता । विवेक जिसके जीवन में रहता है वह प्रतिकूलता, विविध समस्याओं और तनावों से मुक्त हो जाता है ।

जिनके पास ज्ञान रुपी नेत्र हैं, उन्हीं का जीवन पूर्ण सार्थक है । जो शरीर-सेवी न होकर आत्मसेवी होते हैं, उनकी जीवन-शैली अद्‌भुत होती है । जीवन में संयोग-वियोग चलता रहता है । कभी सुख तो कभी दुख का अभाव होता है परंतु जो जीने की कला जानते हैं, वे कभी भी इस प्रवाह में नहीं फँसते ।

जिसने वास्तव में जीना सीखा है, परमात्मा से परिचय किया है, मन में सभी के प्रति मैत्री भाव स्थापित कर लिया है, उसी का जीवन सार्थक है । ●

महावीर की उदात्त दृष्टि

लेखिका – आचार्य चन्दना

ढाई हजार वर्ष पूर्व तीर्थंकर महावीर ने सामान्य जनता की भाषा, जो प्राकृत भाषा कहलाती थी उस भाषा में मंगलमय संदेश दिया था । वह समय था कि जब जातिवाद उग्र रुप लिए हुए था । ब्राम्हण ही सर्वोपरि था, ब्राम्हण ही गुरु था, योग्य हो या अयोग्य उसको सम्मान एवं उच्चस्थान उसके जन्म से ही उसे प्राप्त था । अन्य जाति पर भयंकर अत्याचार होते थे और वे अत्याचार अपराध की कोटि में नहीं आते थे । उसके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार होता था । तीर्थंकर महावीर ने सामाजिक क्रान्ति की थी । उन्होंने कहा था–

कम्मुणा बम्हणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
कम्मुणा वइसो होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

उस समय स्त्रियों की भी पददलित स्थिति थी । महावीर ने स्त्री को पुरुषों की तरह ही सम्मान के साथ जीने का अधिकार बताया । उन्होंने अपना जो संघ स्थापित किया उसके चार आधार स्तम्भ बनाये – साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका । चारों ही स्तम्भ अपने–आप में महत्त्वपूर्ण है किसी भी स्तम्भ को उन्होंने छोटा या बड़ा नहीं बनाया । उन्होंने कहा जैसे पुरुष दीक्षित हो सकता है, उसी प्रकार स्त्री भी दीक्षित हो सकती है । जैसे पुरुष मोक्ष प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार स्त्री भी मोक्ष प्राप्त कर सकती है । स्त्री तैर भी सकती है, और तैरा भी सकती है । तीर्थ का अर्थ है जो संसार सागर से पार कराने में मदद करे ।

प्रभु महावीर ने व्यवसाय के सम्बन्ध में भी स्पष्ट दृष्टि दी । गृहस्थ जीवन भी अच्छा से अच्छा बनाने की जीवन दृष्टि दी । केवल श्रमण वर्ग ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है ऐसी बात नहीं है । उन्होंने गृहस्थ को भी उतना ही महत्त्व दिया है । जब प्रभु महावीर समोशरण में आते हैं तब सर्व प्रथम हाथ जोड़कर, चारों दिशा में घुमकर कहते हैं – 'नमो तित्थस्स' । अर्थात् तीर्थ को प्रणाम करता हूँ । तीर्थ में साधु है, साध्वी है, श्रावक है और श्राविका है सबको प्रणाम करते हैं । वे तीर्थंकर जिनको लक्ष प्राप्त हो चूका है, जिन्हें अब कुछ भी प्राप्त करने जैसा नहीं बचा है, वह व्यक्ति, वह महासूर्य धरती के छोटे दीपक को प्रणाम करता है । एक श्राविका को, एक साध्वी को एक श्रावक को प्रणाम करते हैं स्वयं तीर्थंकर । उन्होंने कहा प्रत्येक आत्मा में ज्योति जल रही है, उसके उपर आवरण आया हुआ है । बस उसे हटाना है । उन्होंने संसार को बुरा नहीं बताया । संसार जैसा है वैसा है । तुम जहाँ खड़े हो वहीं पर अपनी सही समझ के अनुसार अपने जीवन का अमृतत्व प्रकट कर सकते हो ।

तीर्थंकर महावीर के बहुआयामी दर्शन को समझने के लिए उनका त्रिकोणीय सिध्दान्त है – अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह । इन तीनों शब्दों में महावीर का सम्पूर्ण दर्शन समाविष्ट है ।

उन्होंने जीवन की यथार्थ भूमिका पर रहकर अहिंसा का उपदेश दिया । हम उठेंगे, बैठेंगे, चलेंगे, श्वास लेंगे हिंसा तो होगी लेकिन हमारा संकल्प किसी को तकलीफ देने का न हो । उन्होंने एक शब्द दिया 'अनुकम्पा' बड़ा विलक्षण भाव है इस शब्द में यह न केवल अहिंसा को दर्शाता है बल्कि अनेकान्त और अपरिग्रह का भाव भी इसमें समाहित है । इतना विराट और व्यापक शब्द है यह कि सम्पूर्ण जीव सृष्टि को अनुगृहीत करता है । विचारों के समस्त द्वन्द्वों को समाप्त करता है । संघर्ष को सहयोग में बदलता है, आग्रह को सत्याग्रह में परिणत कर देता है, उँच–नीच, अमीर–गरीब की दीवारों को ढहाकर प्रेम और समानता का अपार सागर लहरा देता है ।

अनुकम्पा का अर्थ है स्वानुभूति में सर्वानुभूति ।

अपनी तरह दूसरों के सुख-दुख का अनुभव करना । हम अकेले रह नहीं सकते यह निश्चित है । हमें सबका सहयोग चाहिए बस इसी बात को सब के लिए समझो कि सबको हमारा भी सहयोग मिले । अर्थात् सबके लिए सहयोगी बनो ।

अनुकम्पा का शाब्दिक अर्थ है - समान अनुभव। सामनेवाले व्यक्ति की आत्मा का जो कम्पन है, जो अनुभव है उसी प्रकार का तुम्हारी आत्मा में कम्पन होना, अनुभव होना अनुकम्पा है । अर्थात् दुखी के दुख का अनुभव करना और सुखी के सुख का भी स्वयं में अनुभव होना अनुकम्पा है ।

भगवान महावीर कहते हैं कि अनुकम्पा है धर्म का प्रारम्भ । अनुकम्पा के अभाव में सम्यक्त्व हो नहीं सकता । हमें अपना दुख ही दुख दिखाई देता है । दूसरे के दुख को देख पाना, उसके दुख को महसूस करना अनुकम्पा है । हमें अपनी भूख, अपनी प्यास, अपनी पीड़ा के आगे दूसरा व्यक्ति दिखाई नहीं देता, न उसकी भूख, प्यास, पीड़ा दिखाई देती है । अपने सुख के आगे दूसरों को सुख देने की बात समझ में नहीं आती । व्यक्ति अपने ही सुख-दुख में डुबा रहता है । महावीर कहते हैं अपने से उपर उठकर दूसरे की आत्मा में जो सुख-दुख का कम्पन है उसे अनुभव करो ।

दूसरों के दुख में तो कभी हम सहभागी बन भी जाते हैं । रोते व्यक्ति के आँसुओं के साथ हम आँसू बहा भी देते हैं । इस दृष्टि से देखा जाय तो आसान है किसी दुखी के साथ दुखी होना, किसी बीमार की सेवा करना भी आसान है किन्तु दूसरे का विकास देखकर उसके सुख में सुखी होना बड़ा कठिन है । दूसरों के पास जो नया मोडल है, नयी बिल्डिंग है, हमारे पास नहीं है अत: उसके सुख में हम सुखी नहीं हो पाते, ईर्ष्या उत्पन्न होती है ।

एक रुपक कथा है -

एक अन्धा था उसकी दोस्ती एक लंगड़े आदमी से हो गई । दोनों साथ रहते थे । अंधे के पैर अच्छे थे और लंगड़े की आँखें अच्छी थी । लंगड़ा अंधे के कंधे पर सवार होकर गाँव में भीख माँगकर दोनों की आजीविका चलती । लेकिन एक दिन भींख में मिली रोटियों के बंटवारे में दोनों की लड़ाई हो गयी । लड़ाई शब्दों और गालियों से आगे बढ़कर हाथा-पाई तक आ गई । अंधे ने कहा, 'मैं चलता हूँ मेहनता करता हूँ अत: मेरा हिस्सा ज्यादा होना चाहिए । तुम्हारा बोझ भी मैं ढोता हूँ ।' अत: मेरा अधिकार ज्यादा रोटियों पर है।' लंगडा बोला, 'मैं रास्ता बताता हूँ इसलिए तुम पहुँच पाते हो । चूँकि दृष्टि मेरी है, अत: बड़ा हिस्सा मेरा है ।'

आखिर गुस्सा इतना बडा कि रोटियाँ छोड़छाड़ के दोनों मुँह फेर कर बैठ गये । बात असम्भव है लेकिन ऐसा हुआ कि इन दोनों के पास देवता आ गये । उनके दुख को देखकर उसे दया आ गयी । देखा देवता ने कि लंगड़े की आँखें रो-रोकर सूज गई हैं तो पूछा, ''क्यों रो रहे हो ? क्या दुख है तुम्हारा ? मैं दूर कर देता हूँ, बताओ ।''

लंगड़े का क्या दुख होगा ? यही कि उसे पैर नहीं है । लेकिन यहाँ इस लंगड़े का दुख कुछ अलग है । वह कहता है, ''देव ! आपने दर्शन दिये बड़ी कृपा की और अगर मुझे को कोई वरदान देना चाहते हो तो बस, एक काम करो, वह जो अंधा है न उसे लंगडा बना दो। मुझे पैर होने का उतना दुख नहीं है जितना उस अंधे के पास पैर होने का दुख है । मेरा दुख तभी दूर होगा जब मैं उसे अंधे को लंगडा देखूँ ।'' देवता बोले, 'माफ करो ऐसा वरदान मैं नहीं दे सकता ।'' देवता वहाँ से चलकर अंधे के पास पहुँचे । अंधे को पूछा, तुम क्यों रो रहे हो ? क्या दुख है तुम्हें ? मैं तुम्हारा दुख दूर कर दूँगा । बोलो, क्या चाहते हो ? अन्धे ने कहा, ''प्रणाम देवता! अच्छा हुआ आप आ गये । अब मेरा दुख निश्चित रुप से दूर होगा ।'' देवता को लगा कि यह आँखें माँगेगा अत: बोले, ''तुम्हें यही दुख है न कि तुम्हारी आँखों में रोशनी नहीं है ?'' अन्धे का एक हाथ सिर पर रखा हुआ था दूसरा हाथ जमीन पर पटकते हुए उसने कहा,

''नहीं, नहीं । मुझे नहीं है आँखें तो कोई बात नहीं, पर उस लंगड़े के पास आँखें है यही मेरे दुख का कारण है । अगर तुम मुझे सुखी करना चाहते हो तो उस लंगडे की आँखें छीन लो ।'' अगर मेहरबानी करो तो उस लंगडे की आँखें फोड़ दो ।''

कैसी यह ईर्ष्या है ? दूसरों का सुख हम देख नहीं पाते । अनुकम्पा का अर्थ है दूसरों की प्रसन्नता में प्रसन्नता का अनुभव करो । जैसे दूसरों के दुख को देखकर द्रवित होते हो उसी प्रकार दूसरों को सुखी देखकर सुख का अनुभव करो । महावीर कहते हैं कि अगर दूसरों का सुख तुम्हें दुख देता है तो तुम धार्मिक नहीं हो । अनुकम्पा उभयमुखी है – दूसरों के दुखों को देखकर द्रवित होना तथा दूसरों को आगे बढ़ते हुए देखकर प्रसन्न होना । किसी की कीर्ति सुनकर प्रसन्न होना । किसी की दान सेवा सत्कर्म आदि की प्रशंसा सुनकर और देखकर उसका अभिनन्दन करना एवं कराना । उसकी, अनुमोदना करना भी अनुकम्पा का हिस्सा है । महावीर कहते हैं तुम जीवन रुपी उपवन के माली हो, उसके संरक्षक हो । तुम्हारा दुहरा दायित्व है – मुर्झाते पेड़ों को सींचो और खिलते फूलों को देखकर मुस्कुराओ ।

इसी को आचार्य उमास्वाति कहते हैं – ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' लोग कहते हैं कि नरक या स्वर्ग के अस्तित्व में विश्वास नहीं होता है । मैं कहती हूँ मत विश्वास करो, छोड़ो उस नरक को और उस स्वर्ग को । कम से कम इस धरती पर जो नरक बनाते हो वह तो मत बनाओ । परस्पर एक–दूसरे को मत नोचो, मत तकलीफ दो । आचार्य उमास्वाति का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है 'तत्त्वार्थ सूत्र' उन्होनें दो सूत्र दिये हैं एक है परस्परोपग्रहो जीवानाम् और दूसरा सूत्र है 'परस्परोदीरित दुखा' पहला सूत्र धरती पर स्वर्ग का निर्माण करता है और दूसरा सूत्र धरती को नरक बनाता है । महावीर कहते हैं सहयोग अर्थात् मैत्री और करुणा ही मार्ग है मोक्ष का । ●

विद्या स्वयं महान् है

प्रेषक : श्री. पारसमल चण्डालिया, ब्यावर

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद की घटना है । विश्वविद्यालय में सूचना आई कि अगले दिन भारत के वायसराय लॉर्ड कर्जन कॉलेज में पधारने वाले हैं । प्रिंसिपल, प्रोफेसर तथा ऑफिसर आदि से परिचय कराया जायेगा, अत: सभी की उपस्थिति आवश्यक है । विद्यार्थियों को तो आना ही था । संस्कृत भाषा के अध्यापक पण्डित विद्यालङ्कारजी शास्त्री सूचना का परिपत्र पढ़कर प्रिंसिपल के पास गये और बोले कि परिचय के दौरान मैं उपस्थित नहीं रहूँगा। प्रिंसिपल ने पूछा – ''क्यों आपका क्या कार्यक्रम है?''

शास्त्रीजी बोले – ''मेरा कोई कार्यक्रम नहीं, किन्तु विद्या सत्ता के सामने कभी झुकती नहीं, अत: मैं उपस्थित नहीं हो पाऊँगा ।'' प्रिंसिपल ने समझाया कि कॉलेज के निरीक्षण हेतु इस देश के वायसराय आ रहे हैं, यह सामान्य बात नहीं । आप उपस्थित नहीं रहोगे तो आपका नुकसान भी हो सकता है । शास्त्रीजी ने कहा – ''नुकसान की कोई परवाह नहीं, जो परिणाम आएगा मैं भोग लूँगा और वे चले गये ।''

दूसरे दिन लॉर्ड कर्जन पधारे । उपस्थित लोगों ने उनका स्वागत किया । परिचय के दौरान किसी ने लार्ड कर्जन को संकेत कर दिया कि पण्डित विद्यालयङ्कारजी नहीं आये । लॉर्ड कर्जन ने पूछा – ''पण्डितजी क्यों नहीं पधारे ? वे स्वस्थ तो हैं ?'' ट्रस्टी ने कहा – ''पण्डितजी अपनी कक्षा में हैं और कुछ लेखन कार्य कर रहे हैं ।'' लॉर्ड कर्जन ने कहा – ''कितनी सुन्दर बात है । पण्डितों को अपना समय सहज ही नहीं बिगाड़ना चाहिए । चलो, हम उन्हें मिलने जाते हैं ।'' लॉर्ड कर्जन विद्यालङ्कारजी के कक्ष के बाहर खड़े रहे और पूछा – ''मे आई कम इन सर ।'' पण्डि विद्यालङ्कारजी लॉर्ड कर्जन की विनम्रता देखकर खुश हो गये । बोले – ''सर ! आपकी इस महानता ने ही आपको इस पद तक पहुँचाया है ।'' समग्र कॉलेज का वातावरण प्रसन्नमय हो गया

विद्या सत्ता के सामने नहीं झुकती,
क्योंकि विद्या स्वयं महान् है ।। ●

द्वादश पापस्थानक : कलह

लेखक : आचार्य विजयरत्नसुन्दरसूरिजी म.सा.

नीम का रस जीभ के स्वाद को खराब कर देता है, स्याही की बूंद वस्त्र पर दाग लगा देती है, रेत का कण मशीन की स्निग्धता को बाधित कर देता है । परन्तु,

शब्दों की कटुता, कर्कशता और कठोरता तो सम्बन्धों की गरिमा को और स्निग्धता को, मधुरता को और मस्ती को छिन्न-भिन्न कर देती है ।

कलह आखिर है क्या ?

कलह अर्थात् झगडा । जिससे झगड़ा पैदा होता है उन अपशब्दों के प्रयोग को भी कलह कहा जाता है। आपस में बोल-चाल होना, किसी को नीचा दिखाना, कटाक्ष वचन बोलना, ताने मारना इन सबका समावेश भी 'कलह' में ही होता है ।

कलह के कारण जो भी हों, परन्तु वास्तव में हम यदि स्वयं को कलह का कारण बनने देना नहीं चाहते तो उसके लिए तीन विकल्पों को हमें आँखों के समक्ष रखना है ।

पहला विकल्प : पुण्य को आँखों के समक्ष रखो : ग्राहक बाजार में माल खरीदने जाता है तब केवल माल पर ही दृष्टि नहीं रखता, खुद के पास कितने रुपए हैं, वह भी याद रखता है ।

जेब में रुपए हैं १०,००० और ग्राहक चाहता है कि व्यापारी उसे १,००,००० की कीमत का माल दे दे तो क्या वह संभव हो सकता है भला ? हर्गिज नहीं।

हम किसी को कोई भी सलाह-सूचना करना चाहते हैं, उसके हित की बात करना चाहते हैं पहले हमें अपने पुण्यकर्म को जान लेने की आवश्यकता है ।

हमारे पास यदि यश नाम कर्म की पूँजी नहीं है, आदेय नाम कर्म के क्षेत्र में हम यदि दरिद्र हैं तो हमारी सच्ची बात भी और अच्छी बात भी सामने वाले को ग्राह्य नहीं बनेगी, स्वीकार्य नहीं होगी यह बात निश्चित है ।

मुझे उतना समय दीजिए

'गुरुदेव ! ये मेरे पति हैं ।

उन्हें एक नियम देना है ।'

'कौनसा ?'

'मुझे जब भी सलाह देने के लिए अपना मुँह खोलें तब पहले १ से १०० की गिनती कर लें और फिर मुँह खोलें ।'

'क्या आपको लगता है कि १ से १०० गिन लेने के बाद आपको वे जो सलाह देना चाहते होंगे उस सलाह के शब्द मधुर होंगे ?'

'नहीं'

'तो फिर वे १ से १०० की गिनती कर लेने के बाद तुम्हें सलाह दें या सीधी सलाह दें तुम्हें क्या अंतर पड़ता है ।'

'बहुत बड़ा अंतर पड़ता है । वे १ से १०० की गिनती करेंगे, उसमें जितना समय लगेगा उस समय में मुझे घर से बाहर जाने में सुविधा होगी ।' पत्नी ने जवाब दे दिया ।

हाँ, संस्था या समाज में, परिवार में या ज्ञाति में लगभग यह स्थिति है । सलाह देने वाले और सूचना करने वाले के पास पुण्य की पूँजी है नहीं और इसके बावजूद वह बोलता ही जाता है ।

परिणाम ? या तो विवाद होता है, या तो संघर्ष होता है और या तो सलाह - सूचनाओं की निरन्तर उपेक्षा होती है ।

संदेश स्पष्ट है । सिध्दि साधना के अनुसार मिलती है । समाधि समझशक्ति के अनुसार टिकती है । माल पूँजी के अनुसार मिलता है तो आपकी बात आपकी पुण्य की पूँजी के आधार पर स्वीकार्य-अस्वीकार्य होती है ।

दूसरा विकल्प : व्यक्ति की पात्रता को आँखों के समक्ष रखो : कुम्हार भले ही अत्यन्त कुशल है, लेकिन उसके हाथ लगी है समुद्र की रेत । वह घड़ा कैसे बना पाएगा ?

भोजन बनाने में गृहिणी भले ही अत्यन्त कुशल है, लेकिन उसके पास मूँग के जो दाने हैं वे सारे सीझने की क्षमता गँवा बैठे हैं । मूँग की सब्जी बनेगी कैसे ?

माली के पास भले ही गज़ब की प्रवीणता है लेकिन उसके पास जो बीज हैं वे या तो सड़े हुए हैं और या जले हुए हैं, वे बीज वह कैसे अंकुरित कर पाएगा ?

आपका आदेय नामकर्म और यशनाम कर्म भले ही जबरदस्त है । परन्तु आप जिसे सलाह देना चाहते हैं वह अपात्र है, अयोग्य है, अप्रज्ञापनीय है । आपकी सलाह स्वीकार्य या फलप्रद कैसे बन पाएगी भला ? हर्गिज नहीं ।

याद रखना, प्रचण्ड पुण्य के स्वामी परमात्मा महावीर देव अपने ही शिष्य जमाली को सन्मार्ग पर नहीं ला सके और अनन्तलब्धिनिधान गौतमस्वामी देवशर्मा को प्रतिबोध करने में सफल नहीं हो पाए थे ।

संदेश स्पष्ट है – आपके पुण्य के साथ व्यक्ति की पात्रता को भी देखते रहो ।

धीरे–धीरे सीख जाओगे

'तुम्हें कुछ पता चलता है ?'

कोर्ट में खुद के सामने खड़े जेब कतरे से न्यायाधीश ने पूछा ।

'किस बात का ?'

'इस कोर्ट में मेरे सामने तुम कितनी बार आ चुके हो ?'

'मुझे पता नहीं है ।'

'आठवी बार तुम यहाँ आए हो ।' न्यायाधीश ने कहा ।

'सर ! एक बात कहूँ ?'

'कहो'

'आपका प्रमोशन न हो उसमें मैं क्या करुँ?'

न्यायाधीश ने जेब कतरे की इस निर्लज्जता को देखकर उसके पिता को कोर्ट में बुलाया ।

'आपका बेटा जेब काटते हुए आठवीं बार पकड़ा गया है, आप उसे कुछ समझाइए ।'

'सर ! ऐसा है ना कि इस क्षेत्र में वह अभी नया–नया है । धीरे–धीरे सीख जाएगा फिर यहाँ नहीं आएगा।'

पिता के इस जवाब को सुनकर न्यायाधीश ने मौन धारण कर लिया ।

याद रखना !

सत्सामग्री की अल्पता से भी, सम्यक् समझ के अभाव से भी हृदय की अपात्रता अधिक खतरनाक है।

क्योंकि, अपात्रता तो सड़े हुए पतरे जैसी है । जंग लगा हो उस पतरे को तेजाब से साफ किया जा सकता है, परन्तु सड़े हुए पतरे का तो कोई इलाज नहीं है ।

सुनी है ना ये पंक्तियाँ ?

'निर्लज्ज न लाजे नहीं, करो कोटि धिक्कार,
नाक कपायुं तो कहे, अंगे ओछो भार ।

तीसरा विकल्प : आपके अधिकार क्षेत्र को आँखों के समक्ष रखिए : पुण्य आपका प्रचण्ड है, सामने वाला योग्य भी है, परन्तु उसे सलाह देना आपके अधिकार क्षेत्र में समाविष्ट न हो तो सामने होकर उसे सलाह देने का खतरा मत मोल लेना ।

उदाहरण के रुप में, आपके पड़ोस में रहने वाले युवक को आपने कॉलेज के केम्पस में शराब पीते देखा है । आप उसके पिताजी के कानों तक यह बात पहुँचाने जाते हो और उसके पिताजी आपसे कह देते हैं कि 'बेटा मेरा है या आपका ? आप अपना घर संभालिए। दूसरों के घर की चिंता करने की आपको कोई आवश्यकता नहीं है ।'

यह क्या ? यही कि जहाँ आपका अधिकार नहीं था वहाँ आप सुनाने गए और सामने वाले ने आपको सुना दिया ।

देखना हो तो देख लेना ।

आज के काल में लोग जो चर्चा करते हैं उन चर्चाओं को सुनकर आपको पता चल जाएगा कि अधिकांश लोग उसी की चर्चा करते हैं जो उनके अधिकार क्षेत्र में है ही नहीं ।

'प्रधानमंत्री को विदेशों में घूमना बंद कर देना चाहिए।'

'मीटर से ज्यादा पैसा माँगने वाले रिक्षावालों को जेल में डाल देना चाहिए।'

'बिल्डरों के पास जो काला धन है, सरकार को उसे निकलवाकर गरीबों को दे देना चाहिए।'

'मंदिर अब एक भी नहीं बनना चाहिए।'

'सोलह साल की उम्र में शराब पीने की छूट मिलनी चाहिए।'

'आतंकवादियों को तो काट-काटकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर देने चाहिए।'

'लोकसभा में बैठने वाले ५४२ सांसदों को तिहाड़ जेल में भेज देना चाहिए।'

यह क्या है ?

अनधिकृत चेष्टा !

परिणाम ? शक्ति का दुर्व्यय

मुझे पता ही नहीं था

रास्ते में जा रहे युवक पर दूसरा युवक मुष्टि प्रहार करने जा रहा था और आवेश में बोलता जा रहा था कि - 'तुम्हारे बत्तीस दाँतों को मैं तोड़ डालूँगा।'

लेकिन उसी रास्ते से जा रहे अन्य एक युवक ने इस मुष्टि प्रहार करने वाले युवक का हाथ पकड़ लिया।

'छोड़ दो मेरा हाथ।'

'नहीं छोड़ूँगा तो ?'

'६४ दाँत तोड़ डालूँगा'

'दांत तो बत्तीस ही होते हैं'

'मैं जानता हूँ, लेकिन मुझे विश्वास था कि हम दोनों की लड़ई में तुम जरुर बीच में पड़ोंगे। इसलिए ३२ दाँत उसके और ३२ दाँत तेरे। बता हो गए ना ६४ दाँत।

वह युवक क्या बोलेगा ?

हाँ, झगडे से बचना है ? शब्दों को काँच के बर्तन की तरह सँभाल लीजिए। शब्दों का उच्चारण इत्र की रुई की तरह कीजिए। शब्द का चुनाव हीरे की तरह कीजिए।

सम्यक् शब्दप्रयोग से हुए चमत्कारों को और गलत शब्द प्रयोग से मचे हाहाकारों को आँखों के समक्ष रखिए।

गुड़ और नीम में से चुनाव करने का अधिकार यदि हमारे पास हो तो हम गुड़ का ही चुनाव करेंगे। गंगाजल और गटरजल में से चुनाव करने का अधिकार यदि हमें प्राप्त हो तो हम गंगाजल को ही चुनेंगे। इत्र और विष्ठा के बीच, कंचन और कथीर के बीच, पुष्प और कंटक के बीच चुनाव करने में हम गलती नहीं करते तो सुलह करा सके और कलह उत्पन्न कर सके ऐसे शब्दों में से किसी एक को चुनने में हम जान-बूझकर गलती करते रहें यह कैसे चल सकता है ?

पढ़ लीजिए महोपाध्याय श्री यशोवियजी महाराज रचित कलह पापस्थानक की सज्झाय की कुछ पंक्तियाँ -

'नित्य कलहण - कोहणशील,
भंडणशील-विवादनशील;
चित्त उताप धरे जे एम
संयम करे निरर्थक तेम'

झगड़ालु स्वभाव, क्रोधी स्वभाव, दूसरों को कोसने का स्वभाव, विवाद करने का स्वभाव - एक ही चीज़ दण्ड के रुप में देता है - चित्त का संताप।

और चित्त की यह संतप्ता धन और सत्ता की प्राप्ति को तो मूल्यहीन बना ही देती है, परन्तु संयमजीवन की प्राप्ति को, संयमजीवन की साधनाओं को भी निरर्थक कर देती है।

इस संदर्भ में बात।

स्वार्थवृत्ति, कलहवृत्ति, नकारात्मकवृत्ति और ईर्ष्यावृत्ति ये चांडाल चौकड़ी जीवन में तमाम रस और शक्ति को निचोड़कर साफ कर देती है।

पढ़ लीजिए ये पंक्तियाँ -

'अनबोले बोल से, थोडे-से मौन से,
नाजुक-से दिल को कुचलने में देर क्या ?
आदमी के दिल को टूटने में देर क्या ?

इस पापस्थानक की भयंकरता को ध्यान में रखकर हम सुनिश्चित कर दें कि, कम-से-कम धर्मस्थानों में और परिवारजनों के बीच कलह उत्पन्न हो जाए ऐसा शब्द प्रयोग तो मैं कभी नहीं करुँगा। ●

सुखी जीवन की चाबियाँ - पंद्रह सद्गुण उपासना

२ - कृतज्ञता • ३ - पाप-भय

लेखक : पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद विजयरत्नसेन सूरीश्वरजी म.सा. *(क्रमशः)*

२ : कृतज्ञता

जो व्यक्ति अपने उपकारी के उपकार को जानता है और उसे याद रखता है वह कृतज्ञ है। कृतज्ञ व्यक्ति हमेशा अपने उपकारी के उपकार को याद करके उसे चुकाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह सदा यही चाहता है कि कब मुझे अवसर मिले और मैं अपने उपकारी का सहायक बनूँ।

माता-पिता, विद्या-गुरु और धर्मदाता-धर्मगुरु का हम पर महान् उपकार होता है। इस जीवन में हम जो कुछ भी सुन्दर व श्रेष्ठ कार्य करते हैं, उसमें इन्हीं का मुख्य हिस्सा है।

माता-पिता हमें जन्म देकर पालन-पोषण करते हैं। सर्व चिन्ताओं से मुक्त कर अध्ययन-शिक्षण आदि की व्यवस्था करते हैं। खान-पान, वस्त्र, मकान आदि जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वे ही करते हैं। इस प्रकार माता-पिता का हम पर अगणित उपकार है, अत: उनके उपकार को सदैव याद रखना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार उनकी तन-मन और धन से सेवा करनी चाहिए।

अक्षर-ज्ञान देने वाले विद्या-गुरु का भी अपने पर कम उपकार नहीं है। अज्ञानता के कारण नवजात शिशु का जीवन पशुवत् ही होता है। व्यावहारिक शिक्षण के बाद ही उसमें ज्ञान का प्रकाश और विवेक का पुंज प्रगट होता है। ज्ञान से ही व्यक्ति में विवेक प्रगट होता है जिससे उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का भान होता है।

अपनी आत्मा पर सर्वोत्कृष्ट उपकार धर्मदाता-गुरु का है। माता-पितादि लौकिक उपकारी है जबकि धर्म-गुरु तो लोकोत्तर उपकारी है। कहावत है 'गुरु बिना ज्ञान नहीं।' धर्म-गुरु के बिना हमें आत्मा के शुध्द स्वरुप आदि का बोध कैसे हो सकता है ?

साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के विरह-काल में आचार्य भगवंत ही तीर्थंकर-प्ररुपित धर्म की देशना देते हैं। इस प्रकार धर्मोपदेशक आचार्य भगवंत का अपने पर महान् उपकार है। उन्हीं की धर्मदेशना के श्रवण से हमें आत्मज्ञान होता है। आत्मा की गति-आगति, कर्म-बंधन व कर्म-मुक्ति, जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञान धर्मदेशना के श्रवण से ही होता है। आजीवन सेवा करने पर भी धर्मदाता गुरु के उपकार का बदला नहीं चुका सकते हैं।

ऐसे परम उपकारी महापुरुषों के उपकार को सदैव याद रखना चाहिए और उनके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रगट करना चाहिए। जैन-शासन में 'नमस्कार-महामंत्र' का अत्यधिक महत्त्व है। उस नमस्कार-महामंत्र में सर्व प्रथम 'नमो' पद है। नमो अर्थात् नमस्कार-नम्रता का भाव। साधक पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके परमेष्ठी भगवन्तों के उपकारों के प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट करता है।

अपने उपकारियों के प्रति कृतज्ञता का भाव आने के बाद ही जीवन में धर्म का प्रारम्भ होता है। कृतज्ञता तो मानवता का मूलभूत प्राण है। यदि मानव-जीवन में कृतज्ञता नहीं है तो उसका जीवन पशु से भी हल्का है क्योंकि पशुओं में भी हमें कृतज्ञता दिखाई देती है।

१) रोटी का मात्र टुकड़ा खाने वाला कुत्ता भी अपने स्वामी के प्रति पूर्ण वफादार रहता है और रात्रि में चोर आदि से मालिक की रक्षा भी करता है। जंगली पशुओं में भी हमें कई बार कृतज्ञता के दर्शन होते हैं।

२) सज्जन पुरुष प्रत्युपकार के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। राज्य-प्राप्ति के पूर्व कुमारपाल को

वर्षों तक जंगल में घूमना पड़ा था । उस संकट काल में उसकी जिन-जिन व्यक्तियों ने सहायता की थी, उन सभी को उस (कुमारपाल) ने राज्यप्राप्ति के बाद समृध्द बना दिया था ।

इस दुनिया में हमें चार प्रकार के व्यक्ति दिखाई देते हैं –

१) प्रतिफल की इच्छा बिना ही निष्कारण उपकार करने वाले ।

२) अपने उपकारी के उपकार का बदला चुकाने के लिए उपकारी पर उपकार करने वाले ।

३) उपकारी के उपकार को सदा याद रखने वाले और अवसर मिलने पर उपकारी की सहायता करने वाले।

४) उपकार का बदला अपकार से देने वाले ।

जो व्यक्ति अपने उपकारी के उपकार को याद नहीं करता है और उसका भी अहित करने की इच्छा रखता है – वह कृतघ्न है, नराधम है ।

नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि यह समस्त पृथ्वी पर्वतों तथा नदियों से भारभूत नहीं है परन्तु कृतघ्न और विश्वासघातकों से ही पृथ्वी भारभूत बनी हुई है ।

कृतघ्न व्यक्ति तो पशु से भी हीन है । पशु भी जिसका अन्न खाते हैं, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हैं और समय आने पर अपने स्वामी की रक्षा भी करते हैं ।

अपने उपकारों का बदला चुकाने के लिए श्रीपाल महाराजा ने हर समय धवल सेठ की रक्षा की थी । परन्तु अपनी ही सहायता करने वाले श्रीपाल के प्रति धवल सेठ के हृदय में जो कृतघ्नता थी, उसी कारण वह अपने ही हाथों मारा गया था ।

परमार्थ से वही कृतज्ञ है जो अपने उपकारी को धर्म में स्थिर करता है । किसी व्यक्ति ने दुख में सहायता देकर आपके उपर उपकार किया हो, ऐसा व्यक्ति धन से समृध्द हो और धर्म से हीन हो, ऐसी परिस्थिति में यदि आपका जीवन धार्मिक हो तो आप उस व्यक्ति को योग्य मार्गदर्शनादि देकर अपने उपकारी को धर्म में स्थिर कर उसके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रगट कर सकते हैं ।

इस प्रकार कृतज्ञता मानव के लिए अनिवार्य है । अत: अपने जीवन में मानवता के विकास के लिए कृतज्ञता गुण का विकास करना चाहिए ।

❋ सम्राट संप्रति अपने महल के झरोखे में बैठा हुआ था, तभी उसने आर्य सुहस्तिसूरिजी म. को विशाल परिवार के साथ सस्वागत नगर में आते हुए देखा । आचार्य भगवंत को देखते-देखते संप्रति कुछ विचार मग्न हो गया । तत्क्षण उसे अपना पूर्व भव याद आया। वह उसी समय महल से नीचे उतरकर आचार्य भगवंत के पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला 'भगवंत ! आपने मुझे पहिचाना ?'

हाँ ! तू इस विशाल देश का मालिकसंप्रति है ।'

'प्रभो ! इस वर्तमान रुप में नहीं ।'

तुरंत ही आचार्य भगवंत ने आपने ज्ञान का उपयोग लगाया और बाद में बोले, 'हाँ ! मैं तुझे पहिचान गया। तू गत भव में मेरा शिष्य था ।'

'प्रभो ! आपके ही पुण्य प्रभाव से मैं सम्राट् बना हूँ, गुरुदेव ! यह राज्य मैं आपको समर्पित करता हूँ ।'

'महानुभाव ! हमने तो संसार का त्याग किया है, हम तो अकिंचन हैं, हमें इस राज्य से कुछ भी लेना-देना नहीं है ।'

'हाँ ! धर्म के प्रभाव से तुझे यह सारा धनवैभव प्राप्त हुआ है, अब तू इस संपत्ति के सद्व्यय द्वारा जिनशासन की सुंदर प्रभावना कर सकता है ।'

गुरु भगवंत ने संप्रति राजा को जैन धर्म का मर्म समझाया । उसके फलस्वरुप उसने अपने जीवन में सवा लाख जिनमंदिर बनवाए और जैन शासन की अद्भुत प्रभावना की ।

अपने गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता थी संप्रति के जीवन में !

अपने उपकारी के उपकार को कभी नहीं भूलना और उसे यादकर ऋण-मुक्ति के लिए प्रयत्न करना इसी का नाम कृतज्ञता है ।

पशु में भी कृतज्ञता

एक बार किसी जंगल में एक सिंह के पैर में जोरदार काँटा लग गया । काँटे की चुभन के कारण वह सिंह चलने में असमर्थ हो गया, अत: वह भूमि पर बैठ गया । दो दिन तक निरन्तर वह इसी पीड़ा को सहन करता रहा ।

दो दिन बाद जब एक भील उस जंगल से पार हो रहा था, तब उसने उस सिंह को अपना पैर ऊँचा किये हुए देखा ।

भील ने सोचा - 'जरुर इस सिंह के पैर में काँटा लगा है...।' सिंह की दर्द भरी स्थिति को देखकर उसे दया आ गई । वह सिंह के निकट आया और उसने उसके पैर में से वह काँटा निकाल दिया ।

सिंह के मुख पर प्रसन्नता छा गई और वह उस भील का आभार मानते हुए वहाँ से चला गया ।

भील ने भी वहाँ से विदाई ली ।

कुछ दिनों बाद ही वह भील किसी राजकीय अपराध में पकड़ा गया । उसे मौत की सजा दी गई ।

वहाँ मृत्यु की सजा भी अनोखे ढंग से होती थी।

एक मैदान के चारों ओर लोग इकठ्ठे हो जाते जंगल से पकडकर लाये हुए भूखे सिंह को उस मैदान में छोड़ देते, उसी मैदान में उस अपराधी को भी खड़ा कर दिया जाता । वह भूखा सिंह उस अपराधी को चीरकर फाड़ ड़ालता ।

बस, इसी प्रथानुसार जंगल से एक सिंह पकड़ा गया और पिंजरे में बन्द कर मैदान में लाया गया । उस भील को भी मैदान में खड़ा कर दिया गया ।

सिंह का पिंजरा खोल गया, गर्जना करते हुए सिंह पिंजरे से बाहर निकला ।

परन्तु आश्चर्य ! उस भील पर प्रहार करने के बजाय वह सिंह चुपचाप उस भील के पास बैठ गया ।

महाराजा आदि सभी को आश्चर्य हुआ । यह क्या! भूखे सिंह ने भी उस भील को नहीं मारा ।

फिर उस भील को इसका कारण पूछा गया । उसने कहा - 'और तो मैं कुछ नहीं जानता हूँ... एक बार मैंने जंगल में एक सिंह के पैर में से काँटा निकाला था, हो न हो, यह वही सिंह होना चाहिए ।'

राजा ने सोचा - 'पशु में भी कितनी कृतज्ञता होती है ।' ●

३ : पाप-भय

'दुख से भयभीत होना कायरता की निशानी है और पाप से भयभीत होना धार्मिकता की निशानी है ।'

दुनिया में दुख से घबराने वाले बहुत हैं, परन्तु पाप से घबराने वाले कितने मिलेंगे ?

सज्जन पुरुषों का लक्षण है कि वे दुख से नहीं, पाप से घबराते हैं

श्वान-वृत्ति और सिंह वृत्ति

दुख से घबराना श्वानवृत्ति है । कुत्ते पर कोई पत्थर फेंके तो वह पत्थर को ही चाटने लगता है, जबकि सिंह की और कोई बाण फेंके तो वह बाण की उपेक्षा करके बाण चलाने वाले पर लपकता है ।

अज्ञानी व मूढ़ आत्मा दुख आने पर, दुख के कारणभूत निमित्त को प्रधानता देता है और उसके पीछे रोता है, जबकि सिंहवृत्ति के धारक ज्ञानी व सज्जन पुरुष दुख से न घबरा कर, दुख के कारणभूत पाप से घबराते हैं । उन्हें पाप से सतत डर लगता है ।

अज्ञानी व्यक्ति दुख आने पर निमित्त पर दोषारोपण करता है और फिर रोता है... 'हाय ! उसने मुझे इतना नुकसान पहुँचा दिया, वह तो दुष्ट ही है, इसी कारण मुझे इतना कष्ट सहाना पड़ा... ।' इस प्रकार करुण विलाप करते हुए वह आर्तध्यान करता है और अपने चित्त की प्रसन्नता खो देता है, जबकि दूसरी ओर ज्ञानी व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से समझता है कि जीवन में जो कुछ भी कठिनाइयाँ आती हैं, उन सब

का मुख्य कारण पूर्व भव में उपार्जित मेरा ही कर्म है ।

'आत्मा ही अपने सुख-दुख का कर्त्ता है' इस सनातन सत्य के स्वीकार के कारण भयंकर आपत्ति में भी वह आत्मा हँसती रह सकती है । ऐसा व्यक्ति किसी पर भी दोषारोपण नहीं करता और आए हुए दुख को समतापूर्वक सहन करता है ।

ज्ञानी की यह दृढ़ मान्यता होती है कि 'सुख मात्र धर्म का फल है और दुख मात्र पाप का फल है ।' इस मान्यतानुसार उसे पाप से भय होता है ।

पाप से भीति, धर्म से प्रीति

विकास के पथ पर आगे बढ़ती हुई आत्मा जब अपुनर्बंधक अवस्था को प्राप्त करती है, तब उस आत्मा में पाप से भीति (डर) और धर्म में प्रीति पैदा होती है। अपुनर्बंधक आत्मा के तीन लक्षण हैं -

१) तीव्र भाव से पाप नहीं करना ।

२) संसार में तीव्र आसक्ति नहीं होना ।

३) सर्वत्र औचित्य पालन करना ।

कुछ संयोगवश यह आत्मा पाप का सर्वथा त्याग नहीं कर पाती है, फिर भी इसके हृदय में नफरत का भाव होता है और इस कारण पाप कते हुए भी इसके हृदय में भय बना रहता है ।

आज दुनिया में चारों ओर दुख, भय और सन्ताप बढ़ता ही जा रहा । इसका एकमात्र कारण पाप से भीति और धर्म से प्रीति का अभाव है ।

नीतिशास्त्र में कहा है -

धर्मस्य फलमिच्छन्ति, धर्मं नेच्छन्ति मानवा: ।
फलं पापस्य नेच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति सादरा: ।।

मनुष्य धर्म के फल (सुख) की इच्छा करता है, परन्तु धर्माचरण की इच्छा नहीं करता है और पाप के फल की इच्छा नहीं करता है किन्तु पाप उत्साहपूर्वक करता है ।

दुख से मुक्त बनना चाहते हो तो पाप से मुक्त बनना सीखो । 'पाप' शब्द की व्याख्या करते हुए 'आवश्यकसूत्र' की टीका में कहा है - 'पातयाति नरकादिष्विति पापम् ।' नरकादि दुर्गतियों में आत्मा को गिरा है, उसे पाप कहते हैं । इस संसार में पापी अपने पाप से ही पकता है अर्थात् दुखी होता है ।

उपदेशमाला में कहा है -

अहियं मरणं अहियं जीवियं पावकम्मकारीणं ।
तमिसम्मि पडंति मया, वेरं वड्ढंति जीवतां ।।४४४।।

पापियों का जीना और मरना दोनों अहितकार हैं, क्योंकि वे मरने पर अन्धकार (दुर्गति) में पड़ते हैं और जीवित रहकर प्राणियों के साथ वैर बढ़ाते हैं ।

पाप करने के बाद व्यक्ति अपने पाप को छिपाना चाहता है, परन्तु पाप छिपा नहीं रहता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है -

पाप छिपाये ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग ।
दाबी-दुबी ना रहे, रुई लपेटी आग ।।

एक कहावत भी है - 'पाप का घड़ा फूटे बिना नहीं रहता है ।' सामान्य मनुष्य राज-दंड के भय से पाप का आचरण नहीं करते हैं । मध्यम मनुष्य परलोक के भय से पाप का आचरण नहीं करते हैं और उत्तम पुरुष स्वभाव से ही पाप का आचरण नहीं करते हैं ।

पाप-बंध के अठारह स्थान : निम्न प्रकार की प्रवृत्ति करने से आत्मा पाप कर्म का बंध करती है ।

१. प्राणातिपात : प्रमाद के योग से किसी भी प्राणी के द्रव्य-प्राणों का नाश करने / हिंसा करने से आत्मा पाप कर्म का बंध करती है ।

२. मृषावाद : झूठ बोलना अप्रिय, अहितकार और झूठा वचन बोलने से पाप कर्म का बंध होता है ।

३. अदत्तादान : चोरी करना मालिक की अनुमति बिना, किसी भी वस्तु को उठा लेने से आत्मा पापकर्म का बंध करती है ।

४. मैथुन : अब्रह्मसेवन, मैथुन अर्थात् काम-क्रीड़ा की प्रवृत्ति से आत्मा पापकर्म का बंध करती है।

५. परिग्रह : मूर्छा, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह कर उन पर आसक्ति रखने से आत्मा

पापकर्म का बंध करती है ।

६. क्रोध : किसी भी व्यक्ति पर क्रोध करने से आत्मा पापकर्म का बंध करती है ।

७. मान : किसी भी स्वामित्व प्राप्त वस्तु का अभिमान करने से पापकर्म का बंध होता है ।

८. माया : किसी भी व्यक्ति के साथ माया-कपट आचरण करने से पापकर्म का बंध होता है ।

९. लोभ : धन-वैभव आदि की अधिक प्राप्ति की लालसा से पापकर्म का बंध होता है ।

१० राग : किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु पर मोह / आसक्ति रखने से पापकर्म का बंध होता है ।

११. द्वेष : किसी भी व्यक्ति से घृणा करने से पापकर्म का बंध होता है ।

१२. कलह : किसी भी व्यक्ति के साथ झगड़ा-क्लेश आदि करने से पापकर्म का बंध होता है ।

१३. अभ्याख्यान : किसी भी व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाने से पापकर्म का बंध होता है ।

१४. पैशुन्य : किसी के सच्चे-झुठे दोषों को प्रकाशित करने से पापकर्म का बंध होता है ।

१५. रति-अरति : इष्ट वस्तु की प्राप्ति से खुश होने और अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति से उद्विग्न बनने से पापकर्म का बंध होता है ।

१६. पर-परिवाद : दूसरे की निन्दा करने से पापकर्म का बंध होता है ।

१७. माया मृषावाद : माया पूर्वक झूठ बोलने से पापकर्म का बंध होता है ।

१८. मिथ्यात्व : जिनेश्वर देव ने जो तत्त्व बतलाए हैं, उनसे विपरीत मानने से पापकर्म का बंध होता है ।

(क्रमशः) ●

जैन समाजात सर्वांत जास्त खपाचे व लोकप्रिय मासिक

जैन जागृति

कडवे प्रवचन

मुनिश्री तरुणसागरजी

आलू-बड़ा, मिर्ची-बड़ा, दही-बड़ा के अलावा आज एक और बड़ा का नाम समाज में आया है और वह है - 'मैं - बड़ा' । गृहस्थ कहता है - मैं बड़ा । साधु कहता है - मैं बड़ा । मेरा कहना है कि न गृहस्थ बड़ा है और न साधु बड़ा है बल्कि जो इस 'मैं बड़ा' के लफड़े से दूर खड़ा है; वह बड़ा है । गृहस्थ और साधु दोनों अधूरे हैं क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। २३ घंटे गृहस्थ को साधु की जरुरत पड़ती है तो १ घंटे साधु को भी (आहार के समय) गृहस्थ की जरुरत पड़ती है । श्रावक और मुनि धर्म-रथ के दो पहिए है और कोई भी रथ एक पहिए से नहीं चलता । ●

।। चिंतन ।।

संस्था ही कोणतीही असो - सरकारी, सहकारी, खाजगी व धर्मार्थ - संस्थेत ठराविक तास काम करणे हा झाला कायदा. पण कामात स्वत:ला झोकून देणे ही झाली नैतिकता. मी पगार घेतो म्हणून काम करतो हा झाला व्यवहार.

संस्थेची अस्तित्वाची, सुरक्षिततेची, प्रतिष्ठेची योग्य काळजी घेण्याचे कार्य मला पार पाडावयाचे आहे, ही झाली आपुलकी.

देशाची प्रगती आहे तोवरच माझे अस्तित्व कायम आहे. माझी प्रतिष्ठा आहे, म्हणून देशाला हानीकारक ठरेल, अशी कृती मी कधीही करणार नाही. पण सामाजिक ऋण फेडण्याच्या भावनेने स्वत:ला कामात वाहुन घेईन, ही प्रत्येकाची भावना असली पाहिजे. त्यातच देशाचा विकास आणि स्वत:चा उध्दार आहे. ●

भगवान महावीर : जीवन परिचय

प्रेषक : महेश नहाटा, नगरी (छत्तीसगढ)

१) च्यवन कल्याणक – आषाढ़ सुदी ६ (प्राणत देवलोक से आये)

२) माता एवं पिता – महारानी त्रिशला एवं वैशाली नृप सिध्दार्थ

३) चिन्ह (लांछन) – केशरी सिंह

४) वंश/कुल/गोत्र – इक्ष्वाकु वंश / ज्ञातृ कुल / काश्यप गौत्र

५) जन्म स्थान – बिहार प्रांत में स्थित – कुण्डलपुर

६) जन्म कल्याणक – चैत्र शुक्ला १३, विक्रम पूर्व ५४२/३० मार्च ई.पू. ५९९, अर्धरात्रि

७) देहवर्ण /देहमान/चिन्ह – सूवर्ण वर्ण/सात साथ/केशरीसिंह

८) जन्म-नाम – राजकुमार वर्धमान (वड्ढ़माण)

९) इन्द्र द्वारा प्रदत्त नाम – महावीर के नाम से अलंकृत

१०) अन्य नाम – सन्मति, ज्ञातपूत्र, नाणपुत, वीर, अतिवीर, श्रमण, मतिमान, निर्ग्रन्थ

११) भाई-बहन – राजकुमार नंदीवर्धन एवं बड़ी बहन सुदर्शना

१२) अन्य परिजन – चाचा : सुपार्श्व, मामा : चेटक, पुत्री : प्रियदर्शना, जमाता : जमाली

१३) विवाह – नृप समरवीर की राजकुमारी : यशोदा के साथ

१४) गृहवास/कुमार अवस्था – २८ वर्ष / ३० वर्ष

१५) राज्य अवस्था – राज्यकाल नहीं

१६) वर्षीदान – प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्रा / कुल ३९९ करोड़ एवं अस्सी लाख स्वर्ण मुद्रा

१७) दीक्षा कल्याणक – मृगसर वदी १० ई.पू. ५६९ विक्रम पूर्व ५१२ तीस वर्ष की तरूणाई में राज्य एवं समस्त वैभव का परित्याग करके अकिंचन भिक्षु बने।

१८) दीक्षा स्थल/दीक्षा समय – ज्ञातृखण्ड उद्यान में अशोका वृक्ष के नीचे / मध्यान्ह में।

१९) साथ में दीक्षित – कोई नहीं, अकेले।

२०) तपाराधना – साढे बारह वर्षों में केवल ११ माह और १९ दिन आहार ग्रहण किया।

२१) दीक्षा तप – बेला. दो उपवास।

२२) दीक्षा प्रदाता (गुरु) – स्वयं।

२३) प्रमुख सिध्दांत – सत्य, अहिंसा और अनेकांतवाद।

२४) विचरण क्षेत्र – पूर्व एवं उत्तर भारत। विदेह जनपद, अंगदेश, काशीराष्ट्र, कुणालदेश, मगधदेश आदि।

२५) दीक्षा पश्चात प्रथम – परमान्न खीर (बहुलद्विज के घर में) पारणे का द्रव्य।

२६) साधनाकाल (छदमस्थ अवस्था) – साढ़े बारह वर्ष।

२७) साधना काल में कष्ट – देव, दानव, मानव, पशुओं द्वारा उपसर्ग।

२८) कैवल्योत्पत्ति (कल्याणक) – वैशाख सुदी १० ई.पू. ५५७ विक्रम पूर्व ऋजु बालुका सरिता के किनारे जृंभिक नगरी के बाहर छठ्ठम तप के अंतर्गत गोदु हासन में स्थित शालवृक्ष तले।

२९) प्रथम धर्मोपदेश – मध्यम पावापुरी (अपापानगरी) के पवित्र प्रांगण में।

३०) प्रथम देशना का विषय – यतिधर्म, गृहस्थ धर्म, गणधरवाद।

३१) धर्मोपदेश की भाषा – अर्धमागधी प्राकृत (जनसाधारण की भाषा)

३२. द्वितीय देशना – आपापापुरी के महासेन उद्यान में।

३३) विशेषोपलब्धि – एक ही दिन में मध्यम पावापुरी नगर के प्रांगण में ४४११ मुमुक्षुओं को आर्हत् धर्म में दीक्षित करना ।

३४) कुल चातुर्मास / प्रथम एवं अंतिम चातुर्मास – ४२ चातुर्मास/अस्थिकग्राम आश्रम में प्रथम एवं हस्तिपाल राजा की राजधानी पावापुरी में अंतिम चातुर्मास।

३५) प्रथम शिष्य – इंद्रभूति (गौतमस्वामी)

३६) प्रथम शिष्या – राजकन्या चन्दनबाला

३७) शिष्य परिवार – गौतम प्रमुख चौदह हजार जिनमें चारों वर्ण के मुमुक्षु शिष्य रुप में सम्मिलित थे ।

३८) शिष्या परिवार – आर्या चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार जिनमें सभी वर्ग की विदुषी सन्नारियाँ एवं बालिकाएँ थी ।

३९) प्रमुख श्रावक आनंद, कामदेव, सद्दाल पुत्र आदि एक लाख उनसठ हजार व्रतधारी श्रावक ।

४०) श्राविका समाज – जयंति, सुलसा, रेवती आदि तीन लाख १८ हजार ।

४१) प्रमुख भक्तराजा – मगध नरेश बिंबसार (श्रेणिक), वैशाली नरेश चेटक । अवंतिनरेश चंड ।

४२) संयम जीवन / आयुष्य – बयालीस वर्ष / बहत्तर वर्ष ।

४३) निर्वाण कल्याणक – ई.पू.५२७ विक्रम पूर्व ४७० कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पावापुरी में हस्तीपाल राजा की दानशाला में दो उपवास की स्थिति में पर्यंकासन में उपदेश देते देते मध्यरात्रि को निर्वाण

४४) पार्श्वनाथ एवं महावीर के मध्य अंतरकाल – २५० वर्ष का अंतराल । ●

वक्त पर धर्म ही काम आता है

प्रेषक : माणकदेवी सुराणा, कोलकत्ता

संसार में भाँति भाँति के कर्म करने पड़ते हैं । धन कमाने के लिए कितने कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं । परिवार को चलाने के लिए काम की युक्ति बैठानी पड़ती है, तब यह संसार चलता है ।

सुबह उठते ही देवी देवता की पूजा इस आशा से की जाती है कि दिन ठीक से अच्छा बीते, कमाई हो और परिवार में सुख शान्ति रहे । मनुष्य की जिन्दगी में तीन बातों से प्रेम अधिक देखा जाता है ।

पहला, देवी देवताओं द्वारा मनोकामनाएँ पूरी करवाने की ।

दूसरा धन की, यह सबको प्यारा लगता है । धन के वास्ते जहाँ चाहे वह पहुँच जाता है । बस कमाई का रास्ता दिखना चाहिए ।

तीसरा, कभी कमी खाली समय में धर्म कर्म करने की मन में आती है । पर धर्म से प्रेम कम ही रहता है । कहने का मतलब है, पहला साथी धन, दूसरा अपना परिवार और तीसरा नम्बर धर्म कर्म आता है ।

जब विपदा आती है तो धन वाले के पास जाता है । वह साफ मना कर देता है । फिर वह अपने परिवार वालों को बतलाता है, वे भी मुँह फेर लेते हैं । संकट में कोई काम नहीं आते हैं । सोचते सोचते जब वह धर्म की शरण में जाता है, तब धर्म ही आये हुए संकट से पार लगाता है ।

समझने का सार यही है कि धन जो सबसे नजदीक होता है, वह मरने के बाद साथ में हरगिज जाने वाला नहीं है । यह यहाँ ही पड़ा रह जायेगा ।

दूसरा, तुम्हारे निज का परिवार, जो जन्म भर साथ रहने वाला है, वह भी मरने के बाद भूल जाता है । केवल तुम्हारी फोटू लगाकर फूलमाला चढ़ा देंगे और कुछ वर्षों के बाद टंगी हुई फोटू भी दीवार से उतार कर अलग कर देंगे ।

पर यह तीसरा मित्र जो 'धर्म' है, उससे यदि प्रीत निभाकर रखोगे तो वो ही लोक परलोक दोनों के सुधरने में काम आयेगा । जिससे सदा दूर दूर फासला बनाकर रखा, वह ही आखिर काम आयेगा । वक्त पर किया हुआ करवाया हुआ धर्म ही काम आता है । ●

आत्म ध्यान (Me Within Me) (खंड-२)

२:१ आत्म ज्ञान है, आत्म ध्यान

लेखक : ध्यान गुरु आचार्य डॉ. शिवमुनिजी *(क्रमशः)*

कवि बनारसीदास ने कहा है –

भेद ज्ञान साबुन भयो, समता रस भर नीर ।
अंतर धोबी आत्मा, धोवे निज गुण चीर ।।

आशय है आत्मा पर जो अशुध्दि की परतें आ गई हैं, कर्मों का जो धुल-धुंआ जम गया है उसे अपनी आत्मा के ही भेद-ज्ञान और समता के साबुन से शुध्द करना है । इस अशुध्दि के नीचे परम शुध्द आत्मा का निवास है । अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है । आवरणों को हटाना भर है ।

यह आवरण है आप खुद...

आपसे कोई पूछे कि आप कौन है तो आप अपना नाम बताएँगे । आपके माता पिता ने आपको एक नाम दिया और आप वह हो गए । पर जब आपका जन्म हुआ तब आपका कोई नाम नहीं था, पर आप थे । जब आप माँ की कोख में थे, तब भी आप थे, पर नाम नहीं था । स्पष्ट है कि आप केवल 'नाम' नहीं है । आप पर नाम की मुहर लगा दी गई है । आप कहते हैं कि मैं अमुक व्यक्ति का पुत्र हूँ । लेकिन किसी का पुत्र होना, आप होना नहीं है । आप जन्मे तब इन्सान थे । आप बड़े हुए तो आपसे कहा गया - हिन्दु हो, मुसलमान हो, जैन हो या सिख हो । आप वह हो गए । ना तो आपसे पूछा गया और ना ही आपको धर्म का मतलब समझाया गया । आप होश में आते इसके पहले ही एक मुखौटा लगा दिया । यह नाम, यह धर्म आपकी नेम प्लेट बन गया । आपकी पहचान बन गया । डाकिया आपके नाम की डाक वहाँ डिलीवर करने लगा पर वास्तव में जहाँ से आप आए हो वहाँ आपका यह नाम या पता (धर्म) नहीं है । वहाँ से यदि कोई डाक आई तो आपको कैसे मिलेगी ?

आप कौन है इस सवाल के जवाब में आप यह भी कह सकते हैं कि मैं मनुष्य हूँ । हम भारतीय पुनर्जन्म में विश्वास करते है । तद्नुसार इस जन्म में आप मनुष्य है तो यह इस जन्म का सच है । पिछले जन्म में आप क्या थे । पुरुष थे । पुरुष या स्त्री ? किस देह में थे ? देव, मनुष्य, पशु या पक्षी ? इसी तरह देहान्तर होगा तो अगले जन्म में क्या होंगे ?

स्पष्ट है कि आप एक 'नाम' नहीं हैं ! आप किसी के 'पुत्र' नहीं है ! आपका कोई धर्म नहीं है ! आप 'शरीर' भी नहीं हैं... तो फिर क्या हैं आप ?

आप एक आत्मा हैं । चिन्मय आत्मा । वह आत्मा जो कभी मरती नहीं है, जो कभी जन्म नहीं लेती । वह आत्मा जो सदा शाश्वत है, चिर नूतन है । अनंत ज्ञान, अनंत आनन्द और अनंत शक्ति रुपा है । यह इस ब्रम्हांड का सर्वश्रेष्ठ तत्व है ।

भगवान महावीर से पूछा गया था कि आत्मा कैसी है ? उन्होंने कहा –

आत्मा वर्णनातीत है । आत्मा का वर्णन करते समय सारे शब्द समाप्त हो जाते हैं । यहाँ बुध्दि काम नहीं आती, क्योंकि आत्मा अमूर्त है, उसका कोई वर्ण नहीं है, गंध नहीं है, रस नहीं है, स्पर्श नहीं है । आत्मा न दीर्घ है, न ऱ्हस्व है, न वृत्ताकार है, न त्रिकोण है, न चौरस है और न ही मंडलाकार है । आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न ही नपुंसक है । आत्मा अरुपी (निराकार) सत्ता है ।

उपनिषदों में भी कहा गया है – 'ब्रम्ह सत्य जगत

मिथ्या' । ब्रम्ह का अर्थ है – आत्मा, जगत का अर्थ है – पदार्थ । इस जगत में आत्मा ही सत्य है, वही शाश्वत है । जो सत्य है वही शाश्वत है । यह शरीर पदार्थ (हड्डी मांस, त्वचा आदि) से बना है इसलिए असत्य है । असत्य है इसलिए बदलता है ।

याद करें जब आपका जन्म हुआ तो आप पुष्प जैसे सुकोमल थे । लोग आपको गोद में उठाते थे । दुलारते थे । फिर आप युवा हुए । शरीर विकसित हुआ। रुप और यौवन के मद में संसार की हर असत्य वस्तु का आपने भोग किया । यौवन ढलने के साथ शारीरिक उर्जा क्षीण हुई । आँखों की रोखनी मंद पड़ने लगी । अस्थियाँ कड़काड़ने लगी । शरीर जो एक दिन सुकोमल था, वह बोझ बन गया । बुढ़ापे में शरीर की कैसी दशा हो जाती है, यह शंकराचार्य से सुनिए...

अंग गलितं पलितं मुंडम, दंतविहीन जातं तुंडम ।
कर धृत कम्पित शोभित दण्डं,
तदपि न मुंचत्याशापिण्डम ।।

अर्थात, अंग गल गए हैं, केश श्वेत हो गए हैं, दांत गिर गए है, काँपते हाथों में डंडा लिए हुए है । फिर भी सांसारिक आशाओं का पिंड नहीं छुटता है ।

जन्म से बात शुरु की थी तो मृत्यु को नहीं भूल सकते । कबीर ने कहा था –

हाड जले ज्यों लाकड़ी, केश जले ज्यों घास ।
सब तन जलता देख के, भया कबीर उदास ।।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे । उन्होंने स्याही-कलम को छुआ नहीं था पर उनका एक एक दोहा, दोहे का एक-एक सूत्र आत्मज्ञान से सराबोर है । आत्मज्ञानी कबीर कहते हैं – जिन हड्डियों की मालिश की, बादाम रोगन लगाया, वे लकड़ी की भाँति धूँ-धूँ जल रही है । कुंडल के केश खूब संवारे, वे ऐसे जल रहे हैं जैसे घास जलती है । सारा तन जल रहा है ।

क्या बदला...? शरीर जिसे आप मानते थे, उसे आत्मा दोड गई ।

यही ज्ञान है, यही सत्य है । अज्ञानी व्यक्ति असत्य का पोषण करता है । बनना और मिटना जिस शरीर का धर्म है, उसके पोषण में लगा रहता है । असत्य के पीछे जो सत्य छिपा है... शरीर में जो आत्म तत्व विराजमान है, उसे नहीं देखता । आइए एक बार फिर कबीर को याद करे । उन्होंने कहा है –

साधो ! यह तनु मिथ्या जानो !
या भीतर जो राम बसत है, सांचा ताहि जानो ।

अर्थात, यह तन मिथ्या है । इस तन से जुड़ी हर वस्तु, हर सम्बन्ध मिथ्या है । तन के भीतर जो जीव (राम) है, वही सत्य है । उस सत्य को जानो । उस सत तत्व की उपासना करो । कबीर से बहुत पहले भगवान महावीर ने आत्मा से आत्मा के साक्षात्कार का उपदेश देते हुए कहा था –

आत्म तत्व के अतिरिक्त जो कुछ भी है,
वह आपका नहीं है

यह परिवार, यह धन, यह पद, यह प्रतिष्ठा, यह व्यापार-व्यवसाय और यह शरीर आपका नहीं है । ये सब संयोग है । आज है, कल नहीं होंगे । संयोग के साथ वियोग छाया की भाँति जुड़ा हुआ है । इस अटल सत्य को भूलकर मनुष्य प्रयास करता है कि सुदर संयोग बने रहे । लेकिन ऐसा होता नहीं है ।

शिवाचार्य कहते हैं –

आप सब सुख, शांति और आनन्द चाहते हैं । आप ही क्यों, सृष्टि का हर प्राणी यही चाहता है । हर प्राणी की भाग-दौड़ का अंतिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना है । आप इसलिए धन कमाते हैं कि सुख-साधन जुटा सकें । पद और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें । सुख की अनुभूति कर सकें । जन्म से मृत्यु तक प्रत्येक प्राणी सुख प्राप्ति के लिए प्रयास करता है । जन्म-जन्म की यही कहानी है । लेकिन क्या सुख मिल पाता है ? जिस भी सुख के पीछे आप दौड़ते हैं, उसे प्राप्त कर लेने के बाद आपको पता चलता है कि अरे यह तो सुख है ही नहीं । सुख तो वह होता है जो आपको आनन्द से भर दे, जो आपको शान्ति में ले जाए, जिसे प्राप्त करने के

बाद आप कह उठे – बस, अब और कुछ नहीं चाहिए।

क्या ऐसा परमानन्द... क्या ऐसी परम शान्ति मिलती है। जी हाँ, मिलती है। ऐसा परमानन्द और परम शांति आत्म ध्यान से मिलती है। आज, अभी आप आत्म ध्यान करें, अभी उसकी अनुभूति होगी। यह ऐसी साधना नहीं है कि आज करो और वर्षों बाद परिणाम मिले। आत्म ध्यान कहने-सुनने या समझाने की बात नहीं है। इसे तो स्वयं अनुभव करना पड़ता है।

किसी एक पल नहीं, किसी एक दिन नहीं और किसी एक साल नहीं, पर जीवन पर्यन्त आनन्द में रहने की कला या साधना है – आत्म ध्यान। बिना कठोर तप किए, बिना किसी साधन को जुटाए आप इस साधना से आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। जैसे जल में शीतलता वैसे ही आत्मा में आनंद है।

आपके जीवन में चाहे जितनी समस्या हो, उनके साथ जीने की कला सीखा देगा आत्म ध्यान। इसका साधक दु:खातीत और क्लेशातील हो जाता है। आत्म ध्यानी बड़ी से बड़ी समस्या व शिकायतों को चुटकियों में निपटा देता है। क्यों ? क्योंकि आत्म ध्यान आपको अपनी आत्मा से जोड़ता है। उस आत्मा से जिसे भगवान महावीर ने शाश्वत आनन्दरुपा कहा है। उन्होंने कहा है –

जैसे जल के कण-कण में शीतलता समाई है,
वैसे ही आत्मा के कण-कण में आनंद
समाया हुआ है।

विडम्बना यह है कि हमें आत्मा का बोध नहीं होता और हम सुख की खोज में बाहर भटकते हैं।

यही बुध्द ने कहा है। यही उपनिषद कहते हैं। सबका निहितार्थ एक ही है – ध्यान से भीतर का ज्ञान प्रकट होता है। आत्म ज्ञान उध्दाटित होता है। कैसे...

जल की जरुरत हो तो दूरदेशी शख्स कुआँ खोदता है, हौज नहीं बनाता। वह जानता है कि भू-गर्भ लिए वह मिट्टी की परतें हटाता है। पत्थर उठाता है। कुआँ जितना झुकता है यानि नीचे जाता है उसमें जल के उतने ही झरने फूटते हैं। पर जब हम हौज बनाते हैं तो मिट्टी, पत्थर, सीमेंट, रेत और ईंटो से दीवारें बनाते हैं। हौज जमीन के उपर उठता है, पर खाली। उसमें जल भरना पड़ता है जबकि कुए की झीरें समुद्र से जुड़ी होती है।

कुआँ कहता है – उलीचो... उलीचो। जितना चाहे उतना जल ले लो, मैं फिर भर जाऊँगा। हौज कहता है – लाओ और पानी लाओ।

हम क्या कर रहे हैं ? कुआँ खोद रहे हैं या हौज बना रहे हैं। जीवन जल चाहिए तो आत्मा पर जमा हो गई परतें हटानी पड़ेंगी। आत्मा की गहराई में जितना उतरेंगे उतने झरने फुट पड़ेंगे। आप अपने मूल से जुड़ जाएँगे तो कहेंगे – उलीचो जितना चाहे उतना उलीचो। जितना चाहे उतना 'जीवन-जल' ले लो। मैं फिर भी जाऊँगा और हौज बनाएँगे यानि खूब धन कमाएंगे, खूब पद – प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेंगे पर कहेंगे – खाली हूँ, लाओ और लाओ।

शिवाचार्य की ४० साल की ध्यान साधना और आत्म ध्यान की खोज का निचोड़ है – आत्म तत्व के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह आपका नहीं है। आत्म ध्यान के बिना मिला ज्ञान भी, शाब्दिक ज्ञान है। सूचनाएँ है जो मनुश्य के ब्रेन को इन्फार्मेशन सेंटर तो बना देती है पर उसमें अनुभूति का रस नहीं है। यह ज्ञान भी शुष्क और मृत है।

सच केवल यह है कि हर देह में आत्मा रुपी शाश्वत देवता विराजमान है। उसी शाश्वत देवता की आराधना विधि है – आत्म ध्यान। आत्म ध्यान से आप अपने अंतर्मन में विराजे देवता से रुबरु होते हैं। तन्मयता से उसके साथ जुड़ते हैं। वस्तुत: यह खुद से साक्षात्कार है, खुद से जुड़ना है। क्योंकि आप ही आत्मा है।

आत्म ध्यान की साधना से बोध हो जाता है कि आत्मा का कोई रुप नहीं है, वह वर्णनातीत है । मूर्त शरीर में होते हुए भी अमूर्त है । महावीर, बुध्द, कृष्ण और क्राइस्ट की आत्मा और मेरी आत्मा में कोई अंतर नहीं है । नारायण हो, नर हो या नराधम या देवलोक के देव हो, इहलोक के मनुष्य हो या नरक का नेरिया – आत्म दृष्टि से सबकी आत्मा समान है । इस सत्य का बोध होते ही आत्म ध्यान के साधक को मिल जाता है अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत शक्ति। अनंत का अर्थ है जिसका कभी अंत नहीं होता, जो पहले भी था, आज भी है, आगे भी रहेगा । वही केवल ज्ञान के रुप में प्रकटेगा जो हर आत्मा में विद्यमान है, ध्यान से ही अनुभव होता है कि हम सभी आत्मा है और सभी समान है ।

क्या है अनंत ज्ञान

अपनी आत्मा को जानने से अनंत ज्ञान प्रकट होता है । यह आत्म ध्यान साधना से मिलने वाली अनुभूति है जिसे शब्दों से नहीं समझाया जा सकता है । बुध्दि और पुस्तकों का ज्ञान मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है । अनंत ज्ञान कभी समाप्त नहीं होता । यह जीवन भर साथ रहता है ।

क्या है अनंत दर्शन

दो दृष्टि है – एक मिथ्या और दूसरी सम्यक दृष्टि, सत्य की दृष्टि, आत्म दृष्टि । आत्म ध्यान से मिथ्यात्व का संसार छूटता है तो जीव अपने भीतर के सत्य का दर्शन करता है । मिथ्या दृष्टि सबमें शरीर और कर्म के आधार पर अच्छे बुरे का मुल्यांकन करती है । आत्म सृष्टि संसार की अनंत आत्माओं को अपनी दृष्टि से देखकर, दृष्ट बना देती है । यही है अनंत दर्शन

क्या है अनंत सुख

आज सुख की तलाश में मनुष्य मशीन बन गया है । समय से उठना, दुकान–दफ्तर जाना, घर आना, टीवी देखना, खाना और सो जाना । चैन के पल जीवन से खो गए हैं । आदमी समझदार हो गया है पर सरलता खो गई है । वह न सुख को सरलता से अपना रहा है और न ही दुख को जबकि सुख–दुख का योग है संसार । संसार का हर जीव सुख–दुख के चक्रव्युह में फँसा हुआ है । आत्म ध्यान की गहराई में गोता लगाने वाले साधक को उस सुख का बोध हो जाता है जिसकी संसार के किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति से मिलनेवाले सुख के साथ तुलना नहीं की जा सकती । शिवाचार्य इसे अनंत सुख कहते हैं और समझाते हैं कि यह अनंत है, यानि इसका कभी अंत नहीं होगा । अनंत सुख ही सच्चा सुख है, जो आत्म ध्यान से मिलता है ।

क्या है अनंत शक्ति

आप कहीं भी रहे – महल में, वन में, घर में या कुटीर में, आत्मा की अनंत शक्ति हमेशा आपके साथ होती है । शमशान में अंतिम संस्कार के साथ ही सारे नतो रिश्तेदार भूल जाएँगे । शरीर जल जाएगा । इसके बाद आपकी आत्मा जहाँ जाएगी, जिस योनि को पाएगी – आत्म ध्यान से प्राप्त अनंत शक्ति वहाँ भी आपके साथ होगी । आत्म ध्यान इस अनंत शक्ति का बोध करवा देता है ।

आईए, एक बार फिर उपनिषदों का उपदेश – 'ब्रम्ह सत्यंत मिथ्या' और भगवान महावीर का कथन – 'आत्मा से आत्मा को देखो' को याद करें । 'आपुन ही आपुन को बिसारो' वाली भूल को सुधारें और आत्म ध्यान साधना करके आत्म ज्ञान प्राप्त करें । आत्म ज्ञान से ही मिलेगा – 'अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत शक्ति ।

पूनम की रात थी । कुछ युवकों ने भांग का नशा किया और वे झील के किनारे पहुँचे । वहाँ वे एक नौका में बैठ गए । हवा बह रही थी । भांग का नशा था । युवक मस्ती में थे । वे नाव खेने लेगे । उन्हें खूब मजा आ रहा था । नौका विहार का ऐसा आनन्द उन्हें पहली

बार मिला था । सुबह हुई युवकों ने सोचा – रात भर में तो वे बहुत दूर आ गए होंगे । उनमें से एक युवक नाव से उतरा और हँसने लगा । शेष युवक उसे हँसते हुए देखकर चकित हुए । उन्होंने कारण पूछा तो वह युवक बोला – नौका से उतरो, तुम भी मेरी तरह हँसोगे । यही हुआ । हुआ यह था कि वे नौका को खूंटी से खोलना ही भूल गए थे । रातभर पतवार चलाते रहे, नौका हिलती रही पर जहाँ थी वहीं खड़ी रही ।

वे युवक तो भांग के नशे में थे, पर आप ! आप होश में वही भूल कर रहें हैं । जन्म के समय आपको भी शरीर रुपी नौका मिली थी । सब और चाँदनी खिली हुई थी । शीतल सुगन्धित हवा बह रही थी । चाहते तो आप अनंत यात्रा पर निकलकर अनंत में विलीन हो सकते थे । जीवन का अंत आपके लिए अंत नहीं बनता, अनंत का द्वार बन जाता । लेकिन सांसारिक सुख–दुख के चक्रव्यूह में उलझकर आप वहाँ पतवार चलाते रहें, जहाँ पानी ही नहीं था । इस भ्रम में पूरा जीवन गुजार दिया कि आपने सुख–सुविधा का शिखर छू लिया है । जीवन के चतुर्थ चरण में समझ में आया जो पाया था वह अपना नहीं था और जो अपना था वह खो दिया है ।

खैर, जब जागे तब सबेरा... अब सांसारिक नौका से नीचे उतरें और आत्म ध्यान के सागर में गोता लगाएँ । पहली ही डुबकी से अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति होगी और फिर हर डुबकी से मिलने लगेगा वह परमानन्द जो तीर्थंकर महावीर और अनंत तीर्थंकरों को मिला था । (क्रमश:) ●

अनुशासित और मर्यादित जीवन ही सार्थक जीवन

लेखक : आचार्य श्री ज्ञानसागरजी म.सा.

वर्तमान की विषम समस्याओं के कारण प्रत्येक मानव का जीवन भार स्वरुप बनता जा रहा है । जीवन में नाटकीयता तीव्र रुप में प्रवेश करती जा रही है । अनेक ताने–बानों से जीवन फँस गया है । अत: ऐसी दु:स्थिति से जीवन को बचाने के लिए प्रत्येक मानव को चाहिए कि वह भौतिकता को त्यागकर परम आत्मीयता को जीवन में स्थान दे ।

जीवन जितना अनुशासित और मर्यादित होगा, उतना ही अधिक सुखी होगा । भौतिकता की चकाचौंध में फँसा मानव देश, धर्म और समाज के प्रति अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकता । वह देशभक्ति एवं नैतिक चरित्र का आदर्श भी उपस्थित नहीं कर सकता।

जिसने जीवन का लक्ष्य केवल भौतिकमय समझ लिया है, उसमें प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भावना जागृत नहीं हो सकती । जिसने परमात्मा से परिचय किया, प्राणिमात्र को गले लगाया, वह अन्याय का पोषण कभी नहीं कर सकता ।

संसार के सभी प्राणी सुखी रहें, किसी में बैर और अभिमान की भावना पैदा न हो, सभी निर्भयतापूर्वक जिएँ, प्रत्येक घर में धर्म की चर्चा हो तथा ज्ञान और चरित्र का विकास हो । यही परमात्मा से परिचय हो जाने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति की मंगल भावना रहती है ।

ऐसा व्यक्ति ही तनावमुक्त होता है । उसका हृदय विशाल होता है । वह सांप्रदायिकता से दूर रहता है तथा आत्मशांति प्राप्त करने में सफल होता है । ●

महाराष्ट्रातील जास्तीत जास्त जैन समाजापर्यंत पोहचण्याचा सर्वांत खात्रीशीर, सर्वांत सोपा व सर्वांत स्वस्त मार्ग...

जैन जागृति – जाहिराती साठी संपर्क करा.

वर्तमान में समर्पक भगवान महावीर के सिध्दांत

लेखिका : सौ. सीमा शिरीष गांधी, पिंपरी

भगवान महावीर के विचार और जैन दर्शन का आचार अहिंसा पर प्रतिष्ठापीत है । यही बात विश्व की वर्तमान परीस्थिति में चल रही गतिविधियों का ब्यौरा ले तो समझ में आ सकती है । कितनी महत्त्वपूर्ण बात है, संपूर्ण मानव जाती की रक्षा हेतू अहिंसा की भावना को जगत और जीवन के सभी क्षेत्र में अधिष्ठापित करने हेतु जैन धर्म एकमात्र धर्म है, जो हर एक संभव प्रयास कर सकता है, कदम उठा सकता है । अहिंसा के सद्भाव से ही मानवता जीवित रह सकती है । शांती का वास पुरे विश्व में हो सकता है । पूरे विश्व को इतने दिन विनाशकारी शस्त्रोंका खतरा सता रहा था, पर अब विषाणू संसर्ग से ही पूरे विश्व को खतरा है । करोना व्हायरस, स्वाईन फ्लू, बर्ड फ्लू जैसे विषाणू संसर्ग से पूरी जीवसृष्टि तबाह होने की कगार पर है । चीन ने अब तक जो भी कर्म किये है उसका नतीजा है, जो पूरे संसार को भुगतना पड रहा है । करोना व्हायरस का कहर पूरे विश्व पर मंडरा रहा है, वह चीन के जीव्हवा का ही दुष्परिणाम है, इस धरतीपर शायद ही कोई जीव बचा है जो चीनी लोगों ने नहीं खाया हो ।

और उसका परिणाम देखो, करोना व्हायरस का तांडव देखो पूरे विश्व के जनमानस को अपने गिरफ्त में लेने की कोशीश कर रहा है । यह तो कहा जा सकता है, कि यह घटना निसर्ग ने मानवजाती के मुँह पर मारा हुआ तमाचा है । यह घटना शाकाहार व्यक्ति के जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण है यह दर्शाती है । मगर यह बात तो ढाई हजार साल पहले भगवान महावीर ने हमें बताई थी और मानवजात इससे भटक गयी और निसर्ग के खिलाफ उसका आचरण रहा । मनुष्य स्वयं को धरती के सभी जीवोंका अधिपति मान बैठा और अब इस सदी में जाकर वह ठोकर खाकर खुद के ही विनाश की ओर चल पडा है ।

जैन धर्म की नींव भौतिक विज्ञान व आधुनिक विज्ञान के सिध्दांत पर आधारित है, जो आज पूरे विश्व की रक्षा कर सकती है ।

जैन धर्म का तत्त्वज्ञान जो कि अनेकान्तपर आधारित है और जैन धर्म का आचार अहिंसा पर प्रतिष्ठापित है । यह एक विशुद्ध वैज्ञानिक धर्म है, जिसका विकास एवं प्रसार वैज्ञानिक ढंग से हुआ है । भगवान महावीर के उपदेशों को, विचारों को अपने जीवन में उतारने का सही समय आ गया है । हम अपने जीवन में भगवान महावीर का नाम भी याद रखते है तो संपूर्ण संसार के सभी जीव सुखी हो सकते है । इस भगवान महावीर जन्म कल्याणक में आवो ये संकल्प करते है, भगवान महावीर के चार अक्षरोंसे बने नाम को ही जीवन में उतारने का प्रयास करते है ।

भगवान महावीर का 'म' कहता है 'मद', 'मत्सर त्यागो' । मद यानी अहंकार को त्यागो । रावण ने भी तो अहंकार ही किया था जो पूरी लंका के सर्वनाश का कारण बना । इतिहास गवाह है, घमंडी सिकंदर भी खाली हाथ गया है । मराठी में भी कहावत है 'गर्वाचे घर खाली ।' भगवान महावीर का 'हा' कहता है, 'हार' मत मानो, 'हावी' मत होने दो । राग, क्रोध को अपने आप पर हावी मत होने दो । परिस्थिती से हार मत मानो । हालात चाहे जैसे भी हो हार नहीं माननी चाहिए, हालात बदलते देर नहीं लगती । कर्ज के बोझसे आत्महत्या, किसान आत्महत्या ये बाते सुनने से दुख होता है । राग, क्रोध ऐसे शत्रू है जो ना चाहते हुए भी हमारे मन पर हावी होते है । शरीर तो अपना होता है पर विचारों पर अगर क्रोध रुपी राक्षस हावी हो गये तो मनुष्य, राक्षस की तरह व्यवहार करने लगता है और बाद में पछताता है ।

भगवान महावीर का 'वी' कहता है 'वीर' बनो, 'विजयी' बनो, 'वीतरागी' बनो ।

वीतरागी यानी राग रहित, शांत वृत्ति, जिसका चित्त शुध्द हो ऐसा । वीतरागी होने से हम हालात पर विजय पा सकते है और वीर बन सकते है ।

भगवान महावीर का 'र' कहता है 'रहम' करो।

भगवान महावीर ने सदा जीवों का कल्याण ही चाहा है । संसार में रहकर भी तो दूसरे जीवों का कल्याण कर सकते है । उनके प्रति करुणा भाव रख सकते है । अहिंसा का मूलभाव तो 'रहम' से ही आता है । जो भगवान महावीर का मूल सिध्दांत है 'जीओ और जीने दो' । अगर भगवान महावीर के – मद, मत्सर मत करो । हार मत मानो, हावी मत होने दो । वीर, विजयी बनो, वीतरागी बनो । रहम करो । इन तत्त्वोंको, सिध्दांतों को हम अपने जीवन में उतारेंगे तो सही मायने में भगवान महावीर जन्म कल्याणक सफल हो जायेगा। जैन धर्म की गरिमा बढेगी । जय महावीर ! ●

बुढ़ापे को सुखी कैसे बनाये

संकलन : श्री. अशोक कुमार जैन, जयपुर
प्रवचन : महासती श्री मुदितप्रभाजी म.सा.

* जीवन में मिठास घोलना होगा । परिवार में रहते हैं तो शक्कर की तरह रहना ।
* अपने स्वभाव को सरल बना दो । व्यक्ति का स्वभाव सरल रहेगा तो मिलजुल कर रह सकता है। जीवन जीने का ढंग कैसा हो ? सबकी मन की बातों को सुनना सीखो । केवल अपनी ही बातों को थोपने वाला मत बनो । मैं ही कहता रहूँ, मेरी ही बातों को सुने, मेरी ही बातों को सुनना चाहिये। यदि ऐसा करोगे तो परिवार में मन–मुटाव हो जाता है ।
* ज्यादा झंझटों को मत पालो । मेरी सुनते ही नहीं, मेरी बात मानते ही नहीं, मैं जैसा कहता हूँ वैसा करते ही नहीं है । माथे पर ज्यादा सिर पच्ची नहीं डालना । उम्र हो तो बुढ़ापा सबको आने वाला है।
* साठ के हो जाओ तो सत्ता का सुख छोड़ दो । जो करना है, जिनको करना है वे जाने । कमाई करनी है धर्म की, पुण्य की सत्ता की चाबी पुत्र को सौंप दो ।
* कम बोलो, काम का बोलो । जितना पूछे उतना ही जवाब दो । जितनी जो आवाज करता है, उसका स्थान उतना ही नीचे होता है । पायल, चूड़ी और मुकुट तीन चीजें होती हैं, पायल ज्यादा आवाज करती है उसका स्थान नीचे पैरों में होता है, चूड़ी उससे कम आवाज करती है, उसका स्थान हाथों में होता है, मुकुट बिल्कुल आवाज नहीं करता इसलिए उसका स्थान सिर पर होता है। बिना मतलब की राय देना छोड दो । अनावश्यक टोका–टोकी छोड़ दो वरना दुखी हो जाओगे ।
* दादा बन जाओ तो, दादागिरी करना छोड़ दो । अपनी ही चलाते रहोगे तो कुछ हासिल होने वाला नहीं है । पुण्यवान की चद्दर छोटी होती है । इच्छाओं को घटाओ, मच्छर नहीं काटे इसलिए पैरों को संकुचित कर लो ।
* चूहा अगर पत्थर का हो, व्यक्ति पूजता है, जिन्दा हो तो पिंजरे में बन्द कर देते हैं । माँ पत्थर की हो तो पूजते हैं और जिन्दा हो तो समझ में नहीं आता क्या–क्या करते हैं ।
* एक्सपायर होने से पहले रिटायर हो जाओ । वृध्दावस्था को आनन्द अवस्था बनाओ । खुश रहने की आदत डाल लो ।
* वन बनने की प्रयोगशाला है । पचास के बाद जीवन को बनाओ । राम वन में गये बन गये । बनने के लिए मौका बना लो ।
* दादा बनना ही है तो लाफिंग बुध्दा बन जाओ, प्रसन्नचित्त मुद्रा, हँसते–हँसते सहना सहते–सहते हँसना । ●

समाजाची आवड, समाजाची निवड
जैन जागृति

ऐसी हुई जब – गुरु कृपा

कर्त्तव्य पालन में आगे रहणो

लेखक : आचार्य श्री विजयराजजी म.सा.

गुरु केवे चेला ने – कर्त्तव्य पालन में आगे रहणो !
चेलो पूछे गुरु ने – कियाँ रहूँ ?
गुरु केवे – ''इन्सानियत रो धर्म समझ !''

चिन्तन :

संसार में दो तरह के व्यक्ति होते हैं –

एक वे जो कर्त्तव्य पालन में आगे रहते हैं और दूसरे वे जो पुरुषार्थ हीन, अकर्मण्य होते हैं, उन्हें सिर्फ फल चाहिए, नैतिकता और सहजता से मिल जाए तो ठीक अन्यथा अनैतिक हथकंडे अपनाकर, छीनकर हथिया लेते हैं ।

मगर किसी दूसरे के हक का छीना हुआ फल कभी भी हजम नहीं होता है । दुर्योधन ने पाण्डवों के अधिकार का राज्य छीना था, जिसे वह अमृतफल समझता था, लेकिन उसके हाथ का स्पर्श पाकर वह विषफल में बदल गया और उसकी जान लेकर रहा ।

कर्त्तव्य करने के बाद ही मिला फल अमृतफल की तरह सुख, शान्ति एवं सन्तुष्टि देता है । कर्त्तव्य किए बिना लिया हुआ फल विषफल की तरह सुख, शान्ति, सन्तुष्टि, स्वास्थ्य आदि सब हर लेता है ।

अमृतफल प्रत्येक व्यक्ति को हजम होता है और उसी से जीवन फलीभूत होता है । परिवार, समाज एवं राष्ट्र में आनन्द एवं समृध्दि लाता है । कर्त्तव्य-शीलता मानवता का उजला पहलू है । मानव मात्र का धर्म है । जो अपने धर्म को पूर्ण नहीं करता है वह मानवता के मस्तक पर लगा कलंक है । कर्त्तव्यहीनता एक तरह के चौर्य कर्म में परिगणित है । ऐसे व्यक्ति समाज में वैसे ही त्याज्य है जैसे गैहूँ में रहा कंकर, मीठी बादामों में रही कड़वी बादाम ।

सृष्टि का यह शाश्वत सिध्दान्त है कि फलता वही है; जो ईमानदार एवं प्रामाणिक है, कर्त्तव्यनिष्ठ है । जो कर्त्तव्यनिष्ठा से जी चुराता है, वह कतई आगे नहीं बढ़ता है । आज अगर हम मानव के मनों में झाँककर देखें तो कर्त्तव्य चोर अधिक मिलेंगे और कर्त्तव्यनिष्ठ बहुत कम । इंसान की इंसानियत कर्त्तव्यनिष्ठा है, जो इंसान की देह में कर्त्तव्यनिष्ठ इंसान नहीं है, वे इंसान के वेश में भेड़िए हैं, जो छल-कपट करके दूसरों का फल चुरा ले जाते है ।

हमेशा यह सत्य पूर्णत: ध्यान में रखना चाहिए कि कर्त्तव्य चोर मानव अपने सुख के लिए दूसरों का फल चुराकर सुख भोगता है वह अगले अनेक जन्मों तक अपने लिए कंगाली, दरिद्रता एवं गरीबी के द्वार खोल लेता है । उसका परिश्रम अनेक जन्मों तक वन्ध्या हो जाता है, जिसका असर हजार प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं होता है । बाद में भाग्य उससे परिश्रम तो बहुत कराता है मगर फल बिल्कुल नहीं मिलने देता है । अगर फल हाथ में आ भी गया तो भाग्य उसके लिए ऐसे दृष्ट-अदृष्ट गिध्द तैयार कर देता है, जो झपट्टा मारकर फल को छीन ले जाते हैं ।

उसके हाथों में परिश्रम की रेखा रहती है मगर फल की रेखा नहीं रहती है । फल का उसके जीवन से कोई वास्ता नहीं रहता है । वह दूसरों को फला-फूला देखता है, अल्प परिश्रम में भी मिट्टी में सोना बना हुआ देखता है तो वह अपने भाग्य पर बहुत रोता है, पछताता है, आहें भरता है मगर मिलता कुछ भी नहीं ।

दुनियाँ में गरीबी होने का यह प्रमुख कारण है कि इंसान कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं है । वह ईमानदारी से काम नहीं करता है । पैसे के ईमानदार लोग तो बहुत मिल जाएँगे मगर सेवा-कार्य में ईमानदार बहुत कम मिलेंगे । नौकर झाड़ू लगाता है तो बीच-बीच में लगा देता है किनारों पर कचरा छोड़ देता है । कामवाली बाई मालिक के सामने सफाई से काम करती है, मालिक की नजर हटते ही घास काटने लगती है । बहू भी जिम्मेदारी से काम

नहीं करती है । नेता सरकार से पैसा पूरा ले लेते हैं, जनता को आश्वासन भी भरपूर देते हैं; मगर वादों को पूर्ण करने का समय जब आता है तो खिसक जाते हैं।

इस तरह आज सर्वत्र कर्त्तव्यहीनता छाई हुई है । इसी कारण कोई मानव सुखी नहीं है । इन्सान अगर इन्सानियत से गिर जाए तो फिर दुनियाँ में बचता ही क्या है ?

अत: सब इंसानियत को समझें और कर्त्तव्य के प्रति सजग एवं ईमानदार बनें । यही गुरु की सीख है । ●

जागृत विचार

संकलन : प्रकाश एच बोथरा, पुणे
मो. ७२७२९७२९९९

* स्तोत्रापेक्षा सेवेनेच ईश्वर प्रसन्न होतो.
* जेथे बुद्धीने निर्णय घेऊन शासन शिक्षा केली जाते तेथे शांतीची वाढ होते.
* आदर्श चांगल्या गोष्टीसाठीच दाखवावा लागेल. वाईट गोष्टी आपोआप आत्मसात होतात.
* अति परिचयाने अनादर होतो.
* स्वभावाचा साधेपणा हा सखोल विचारांचा नैसर्गिक परिणाम असतो.
* भिकेच्या पोळीपेक्षा कष्टाची भाकरी केव्हाही चांगली.
* मनाला नेहमी चांगल्या उद्योगात गुंतूवन ठेवा.
* मोठ्या मोठ्या गोष्टीचे बेत करण्यापेक्षा छोट्या छोट्या गोष्टीने आरंभ करणे.
* निवडलेला रस्ताच जर इनामदारीचा व सुंदर असेल तर थकून जाण्याचा प्रश्नच उरत नाही, भले सोबत कुणी असो वा नसो.
* कुणाला प्रेम देणे सर्वात मोठी भेट असते आणि कुणाकडून प्रेम मिळविणे सर्वात मोठा सन्मान असतो. ●

एक व्यक्ती - एक झाड
झाडे लावा - देश वाचवा

मृत्यु को महोत्सव बनाएँ

मृत्यु की मृत्यु

लेखिका : साध्वी-युगल निधी-कृपा

जिससे बचने का कोई इन्तजाम नहीं और जो कब आयेगी मालूम नहीं, उसका नाम है... मृत्यु ।

आज कम्प्युटर और इंटरनेट ने ब्रेन की शक्ति को बढ़ाया है... टी.वी. एवं वी.सी.डी. ने आँख का विषय बढ़ाया है... रेडियो एवं ग्रामाफोन ने कान का विषय विस्तृत कर दिया है ।

इस प्रकार विज्ञान ने समस्त अंगों की शक्तियों का संवर्धन किया परन्तु मृत्यु का समाधान विज्ञान के पास भी नहीं है ।

जीवन में मृत्यु का अन्तिम क्षण आये एक बार... किन्तु उसका खौफ मँडराए बार-बार... । यह खौफ जीवन को जीते हुए भी निष्प्राण कर देता है क्योंकि मौत जिन्दगी की तमाम अनुभूतियों को, वास्तविकताओं को, सम्बन्धों को और सामग्रियों को एक पल में समाप्त कर डालती है ।

मनोवैज्ञानिक तथ्य है, जिससे भय लगे उसे जान लेना ही उस भय से निवारण की रामबाण औषधि है । भय का भूत जब मनुष्य के सिर पर सवार हो जाता है तब वह अपने आपको भूल जाता है और अपने व्यक्तित्व को बौना बना लेता है ।

जब मन में भय सवार हो तब शरीर में एक ऐसा रस उत्पन्न होता है जो भीतर की शक्तियों को समाप्त कर देता है । इससे विपरीत जब भय पर काबू पा लिया जाता है तब शरीर में एक ऐसा रस उत्पन्न होता है जो भीतर की सुषुप्त शक्तियों को प्रकट करके विकट परिस्थिती में भी विजेता बना देता है ।

हे आत्मन् ! मौत पर विजय प्राप्त करना है तो पहले भय पर विजय प्राप्त कर... भयभीत आदमी सत्य का दर्शन नहीं कर सकता, ड़र... ड़रने वाले को डराता है, जो उसके सामने डट कर खड़ा रहता है उसका वह कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता... इसलिए जो मौत के भय से उपर उठ जाते हैं उनके 'मृत्यु की मृत्यु' हो जाती है। ●

स्वास्थ्य और जैन धर्म - १

लेखक : प्रो. धर्मचन्द जैन, जयपूर *(क्रमशः)*

सम्प्रति 'स्वास्थ्य' शब्द से प्रमुखतः शारीरिक स्वस्थता को ग्रहण किया जाता है, जो अपूर्ण है । सुश्रुत संहिता में स्वस्थ का स्वरुप इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है –

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।

वात, पित्त एवं कफ दोष जिसके सम हों, अग्नि सम हो, धातु, मल एवं क्रियाएँ सम हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ एवं मन प्रसन्न हों वह स्वस्थ कहलाता है । स्वस्थता के इस लक्षण से विदित होता है कि शारीरिक स्वस्थता के साथ आत्मा, इन्द्रिय एवं मन की प्रसन्नता भी स्वस्थता का लक्षण है ।

मात्र शारीरिक व्याधि का अनुभव नहीं होना ही स्वस्थता नहीं है, अपितु स्वास्थ्य के तीन स्तर हैं – आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक । आत्मिक स्तर पर जो व्यक्ति क्रोध, अहंकार, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि विकारों से जितना आक्रान्त है वह उतना अस्वस्थ है तथा जो इन पर जितना अधिक नियन्त्रण रखता है वह उतना स्वस्थ है । इसी प्रकार मानसिक रुप से अवसाद, तनाव, असन्तोष, असन्तुलन, नकारात्मक मनोवृत्ति आदि से जो जितना ग्रस्त है वह उतना अस्वस्थ है तथा जो इन्हें जितना नियन्त्रित कर पाता है वह उतना स्वस्थ है । बहुत से शारीरिक रोग आत्मिक एवं मानसिक अस्वस्थता से उत्पन्न होते हैं । रक्तचाप, हृदयाघात, मधुमेह, कैंसर आदि अनेक रोग इसके उदाहरण हैं ।

जैन धर्म में अहिंसा, संयम एवं तप स्वरुप धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति शरीर, मन एवं आत्मा तीनों स्तरों पर स्वस्थता का अनुभव कर सकता है । क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, संयम, शौच, तप, त्याग, ब्रम्हचर्य एवं अकिञ्चनता रुप दश धर्म आत्मिक शुध्दि एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रमुखता देते हैं, किन्तु इनसे तन भी स्वस्थ रहता है । जब आत्मा के विकार उपशान्त होते हैं अथवा उनका विनाश होता है तो आत्मिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य स्वतः प्राप्त होता है तथा मानसिक स्वास्थ्य के साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी उपलब्ध होता है ।

आत्मा या जीव जब स्वभाव में रहता है तो वह स्व में स्थित होने से स्वस्थ कहलाता है । वह राग–द्वेष आदि विकारों से रहित होने पर स्वस्थ होता है । ऐसी स्वस्थता तो वीतरागों को प्राप्त होती है, पर जो वीतराग नहीं बने हैं, किन्तु आत्म–विकारों को नियन्त्रित रखते हैं, समता का अभ्यास करते हैं, वे भी अपेक्षाकृत उन व्यक्तियों से स्वस्थ रहते हैं जो निरन्तर तीव्र विकारों में जीते हैं । तीव्र विकार भावों में जीने वाला चेतना से तो अस्वस्थ होता ही है, मन एवं तन से भी अस्वस्थ होता है । हमारे भावों का प्रभाव मन एवं शरीर पर पड़ता ही है । भावों का सम्बन्ध आत्मा या चेतना से हैं । क्रोध आदि कषायों की औदयिक भावों में गणना की गई है । कृष्ण, नील आदि षड् लेश्याओं की भी गणना औदयिक भावों में हुई है । इन भावों की अशुध्दता एवं तीव्रता का प्रभाव सम्पूर्ण चेतना पर पड़ता है । मन एवं शरीर भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते ।

स्वस्थ व्यक्ति आत्मा, मन एवं शरीर तीनों स्तरों पर स्वयं को ऊर्जा एवं वीर्यवान् अनुभव करता है । उसमें बल एवं सामर्थ्य का प्रवाह निरन्तर सक्रिय रहता है । वह आलस्य एवं प्रमाद को दूर रखता है । उत्साह एवं प्रसन्नता से लबालब रहता है ।

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में हमारी अत्यन्त स्थूल दृष्टि है । हम चेतना एवं मन की अस्वस्थता को

गम्भीरता से नहीं लेते हैं । मानसिक रोग भी जब भयंकर तनाव, अवसाद (Depression), फोबिया, सिजोफ्रेनिया, पैरोनाइड, ओ.सी.डी. आदि अवस्थाओं को प्राप्त न कर ले तब तक उसकी चिकित्सा के लिए प्रयत्नशील नहीं होते हैं । कुछ मनोरोगी अपने को सदा रोगी समझते हैं तो कोई मनोरोगी स्वयं अपने को रोगी नहीं मानता, परिवार का दूसरा व्यक्ति ही उसकी चिकित्सा का उपाय करता है । आत्मा के विकारों को रोग समझने की अवधारणा तो अभी विकसित ही नहीं हुई है, चित्त या मन की अस्वस्थ दशा को भी सामान्यत: मिटाने की बजाय दबाने का प्रयास किया जाता है । मानसिक तनाव या परेशानियों को दबाने के लिए भाँति-भाँति का नशा किया जाता है अथवा नींद की गोलियाँ खायी जाती हैं, परन्तु इनसे मानसिक रोग ठीक नहीं होते हैं, कुछ काल के लिए उनका अनुभव नहीं होता है । मानसिक अस्वस्थता का प्रभाव शरीर को भी अस्वस्थ बनाता है।

रोग के कारण

शारीरिक रोगों पर विचार किया जाए तो स्थानाङ्गसूत्र में रोग के नौ कारण निरुपित किए गए है- १) अतिभोजन, २) अहित भोजन, ३) अतिनिद्रा, ४) अतिजागरण, ५) मल को रोकना, ६) मूत्र को रोकना, ७) अधिक भ्रमण, ८) प्रतिकूल भोजन, ९) इन्द्रियों से अति विषय सेवन । शारीरिक रोग के ये सभी व्यावहारिक कारण हैं । समग्र दृष्टि से विचार करने पर शारीरिक रोग के अन्य कारण भी प्रतीत होते हैं १) क्रोध आदि आत्मिक विकार एवं अशुभ लेश्याएँ, २) नकारात्मक मानसिकता, तनाव, दोषदृष्टि आदि । ३) खान-पान की अशुध्दता एवं असमुचित प्रवृत्ति (जिसमें अतिभोजन, अहित भोजन एवं प्रतिकूल भोजन का समावेश हो जाता है ।) ४) अव्यवस्थित दिनचर्या (इसमें अतिनिद्रा एवं अतिजागरण का अन्तर्भाव हो जाता है ।) ५) स्वास्थ्य सम्बन्धी अज्ञान, ६) बाह्य जीवाणु, कीटाणु आदि । ७) दुर्घटना, ८) पूर्वबध्द कर्म, ९) अवस्थागत कारण-बालक, वृध्द आदि में रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होने पर रोगोत्पत्ति । इस प्रकार के अन्य कारण भी सम्भावित हैं ।

क्रोध शरीर में विष का कार्य करता है । इससे पाचन क्रिया में व्यवधान उत्पन्न होता है, श्वास की गति असामान्य हो जाती है, चित्त अशान्त होता है - ये सभी रोग के रुप हैं । अहंकार पर चोट के कारण रक्तचाप बढ़ सकता है, अवसाद (डिप्रेशन) की स्थिति आ सकती है । माया के कारण चित्त कई उलझनों में फँस जाता है, जिससे तनाव उत्पन्न होता है, फलत: कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । लोभ असन्तोष को जन्म देता है, चित्त को अशान्त एवं अव्यवस्थित बनाता है, सर्वविध पाप का कारण बनता है । इसके प्रवाह में शारीरिक स्वास्थ्य गौण हो जाता है, दिनचर्या गड़बड़ा जाती है । शुभ भावों से युक्त होने पर शुभ लेश्याएँ होती है तथा अशुभ भावों से युक्त होने पर अशुभ लेश्या उत्पन्न होती है । कृष्ण, नील एवं कापोत ये तीन लेश्याएँ अशुभ हैं । इन लेश्याओं से युक्त व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह सम्बन्धी आस्रवों से युक्त होता है, मन, वचन एवं काया से अशुभ चिन्तन, अशुभ वचन एवं अशुभ कर्म में सम्पृक्त रहता है, इन्द्रियों को नियन्त्रण में नहीं रखता, नृशंस होता है, ईर्ष्यालु, अमर्षयुक्त, निर्लज्ज, द्वेषी, प्रमत्त रसलोलुप, वक्र आचरण करने वाला, मायावी, मिथ्यादृष्टि एवं अनार्य होता है ।' ऐसा व्यक्ति मन से रोगी होने के कारण शरीर से भी रोगी होता है ।

नकारात्मक मानसिकता वाला व्यक्ति प्रसन्नचित्त नहीं रहता है । वह सदैव भय एवं आशंकाओं में तथा आर्त एवं रौद्रध्यान में जीता है । मानसिक रुप से सदैव अस्वस्थ रहता है तथा शारीरिक रुप से भी अनेक रोगों का आश्रय बनता है । वह स्वयं तनाव में जीता है तथा दूसरों को भी तनाव देने का कार्य करता है ।

एक अध्ययन के अनुसार सकारात्मक सोच वाले व्यक्ति की ७२ प्रतिशत कार्यक्षमता बढ़ जाती है तथा रोगों से लड़ने की शक्ति ५२ प्रतिशत तक बढ़ जाती है । मन से प्रसन्न एवं सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति शीघ्र ही कैंसर जैसे भयंकर रोगों पर भी विजय प्राप्त कर लेता है तथा औषधि का सेवन करते हुए भी नकारात्मक दृष्टि एवं तनाव हो तथा मन में प्रसन्नता न हो तो असाध्य रोग ठीक होना कठिन होता है ।

इस समय खान-पान की अशुध्दता व्याप्त है । खेतों में कृत्रिम उर्वरकों एवं कीटनाशक रसायनों का प्रयोग किया जाता है, जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं । बाजार में मसालों एवं खाद्य पदार्थों में मिलावट के कारण भी स्वास्थ्य खराब होता है । कोल्ड ड्रिंक, चॉकलेट, आईस्क्रीम, अचार आदि पदार्थ शरीर को लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाते है । फास्टफूड एवं जंक फूड की संस्कृति ने स्वास्थ्य को बर्बाद किया है । ऑर्गेनिक एवं प्राकृतिक भोजन का प्रयोग दुर्लभ होता जा रहा है । घर की रसोई की अपेक्षा बाहर का अशुध्द भोजन अधिक प्रयुक्त हो रहा है, जिससे स्वास्थ्य को हानि पहुँच रही है ।

दिनचर्या की अव्यवस्थितता भी रोग का एक कारण है । हमारे शरीर के अंगों के कार्य करने की भी घड़ी निर्धारित है, उसमें बार-बार विघ्न उत्पन्न करने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है । नींद के समय में जागना तथा जागने के समय नींद लेना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं है । अतिनिद्रा एवं अतिजागरण रोगोत्पत्ति के जनक हैं । भोजन के समय भोजन न करना तथा असमय में भोजन करने से भी पाचन तंत्र अव्यवस्थित हो जाता है, अत: भोजन अपने निर्धारित समय पर किया जाना ही उपयुक्त है । जब शंका हो तब निवारण हेतु न जाने एवं मल-मूत्र का निरोध करने से भी रोग उत्पन्न होते हैं ।

एक प्रमुख कारण है - स्वास्थ्य एवं आहार के सम्बन्ध में मनुष्य का अज्ञान । आज का मानव स्वास्थ्य की अपेक्षा स्वाद को प्रधानता देता है । उसे यह ज्ञात नहीं है कि आत्म-विकारों एवं मानसिक चिन्ता, तनाव, अवसाद आदि का भी शारीरिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है । उसके लिए कौनसा आहार स्वास्थ्यप्रद है एवं कौनसा आहार हानिकारक, इसका भी उसे बोध नहीं है । खाद्य पदार्थों के गुणधर्मों से अधिकांश लोग अपरिचित हैं । इसकी जानकारी विद्यालय स्तर पर आवश्यक है । प्रारम्भ से ही यह बोध हो जाए तो अधिक अस्पतालों की आवश्यकता नहीं रहेगी । उत्तराध्ययन सूत्र में अज्ञान को दुख का कारण कहा गया है, किन्तु अज्ञान को रोग का भी कारण कहा जा सकता है । रोग भी एक प्रकार का दुख है ।

बाह्य जीवाणुओं एवं कीटाणुओं के कारण भी मलेरिया, स्वाइन फ्ल्यु जैसे रोग उत्पन्न होते हैं । कई बार फूड पॉइजनिंग हो जाती है । जीवाणुओं एवं कीटाणुओं से रोग प्राय: तब उत्पन्न होता है जब शरीर में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है । जैन धर्म में पराघात नामक कर्मप्रकृति प्रतिरोधात्मक शक्ति का कार्य करती है । बाहर जल को व्यर्थ बहाने, सफाई नहीं रखने आदि कारणों से जीवाणु कीटाणु अधिक उत्पन्न होते हैं । कई बार इनके कारण एक से दूसरे व्यक्ति में भी रोग संक्रमित हो जाता है । सजगता रखकर ऐसे रोगों से बचा जा सकता है ।

दुर्घटना से भी व्यक्ति रोगी बन सकता है । दुर्घटना तीन प्रकार से होती है, स्वयं की असावधानी के कारण, दूसरों की असावधानी के कारण तथा प्राकृतिक भूकम्प आदि कारणों से । स्वयं की असावधानी के कारण को व्यक्ति स्वयं अपनी सजगता से दूर कर सकता है । शेष दोनों पर हमारा नियन्त्रण नहीं है । उसे असातावेदनीय कर्म के उदय का निमित्त समझना चाहिए।

अत: पूर्वबध्द कर्म भी रोग के कारण बनते हैं । इसमें असातावेदनीय कर्म के उदय को प्रमुखता दी गई है । जब असाता का उदय होना होता है तो रोग आदि

घेर लेते हैं । मोह कर्म एवं वीर्यान्तराय कर्म भी रोगोत्पत्ति में कारण बनते हैं । मोह के कारण भोजन पर नियन्त्रण नहीं होता तथा वीर्यान्तराय कर्म के कारण अशक्तता का अनुभव होता है जो रोग के होने में कारण कहे जा सकते हैं । इन्द्रियों के द्वारा विषय सेवन चित्त एवं शरीर दोनों को विकृत बनाता है तथा शारीरिक क्षमता को कम करता है ।

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह के कारण व्यक्ति का निजी स्वास्थ्य तो विकृत होता ही है सामाजिक स्वास्थ्य भी विकृत होता है । इसलिए ये भी स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले हैं ।

विभिन्न रोग

आचारांग सूत्र में १६ प्रकार के रोगों एवं शारीरिक विकृतियों का उल्लेख हुआ है, यथा - १, गण्डमाला (गर्दन में सूजन, बड़ी फुँसियाँ आदि), २. कोढ़, ३. राजयक्ष्मा (टी.बी.), ४. अपस्मार (मिरगी), ५. काणत्व, ६. जड़ता (गेंगरिन, लकवा आदि), ७. कुणित्व, ८. कुबड़ापन, ९. उदररोग (जलोदर, अजीर्ण, आफरा, उदरशूल आदि), १०. मूकता, ११. शोध (सूजन), १२. भस्मक रोग (अधिक आहार सेवन), १३. कम्पन वात (शरीर के अंगों में कम्पन), १४. पीठसर्पी (पंगुता), १५. श्लीपद (हाथीपगा, पैर का फूलना), १६. मधुमेह । इनमें काणत्व, कुणित्व, कुबड़ापन, मूकता, पंगुता आदि शारीरिक विकृतियाँ हैं जो जन्म से या जन्म के पश्चात् भी हो सकती हैं, शेष गण्डमाला, कोढ, उदर रोग, शोध, भस्मक रोग, कम्पनवात, मधुमेह आदि शारीरिक रोग हैं ।

आधुनिककाल में रोगों के प्रकारों एवं संख्या में अचिन्त्य वृध्दि हुई है । आचरांग सूत्र में कथित उदर रोग में अजीर्ण, जलोदर, आफरा, पेट दर्द आदि के अतिरिक्त लीवर, किड़नी एवं आँतों की विकृतियों का भी समावेश हो जाता है । इनमें आई शोध या सूजन का समावेश आचारांग में परिगणित शोध के अन्तर्गत हो जाता है । सम्प्रति हृदयघात, उच्च रक्तचाप, कैंसर, दमा, गठिया, अल्सर, माइग्रेन, चर्मरोग, प्रोस्टेट की वृध्दि, पक्षाघात, पथरी आदि अनेक रोग विद्यमान हैं । अलग-अलग अंगों के रोगों के अलग-अलग चिकित्सक हैं । मधुमेह भी कई प्रकार का है, एड्स एक नया रोग है । कम्पनवात अब पारकिंसन के नाम से जाना जाता है । नेत्र-चिकित्सा, गला-नाक एवं कान चिकित्सा, स्त्री रोग चिकित्सा आदि अनेक रोगों के पृथक् विशेषज्ञ हैं ।

स्वास्थ्य के सूत्र

आगमों में शारीरिक स्वास्थ्य पर भी मार्गदर्शन प्राप्त होता है । ओघनिर्युक्ति में कहा गया है -

हियाहारा मियाहारा अप्पाहारा य जे नरा ।
न तो विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ।।

जो मनुष्य शरीर के लिए हितकारी, सीमित एवं अल्प आहार ग्रहण करते हैं उन्हें वैद्यों से चिकित्सा कराने की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं अपने चिकित्सक होते हैं । शरीर की आवश्यकता के अनुरुप अविरुध्द आहार हिताहार होता है । पुरुष के लिए प्रमाणोपेत ३२ कवल तथा स्त्री के लिए २८ कवल का आहार मिताहार है तथा इससे भी न्यून आहार करने को अल्पाहार कहा गया है । यह अल्प आहार एक प्रकार से ऊनोदरी तप है । हिताहार के सम्बन्ध में कहा गया है -

तेल्लदहिसमा जोगा, अहितं उ खीरदहिकंजियाणं च ।
पत्थं पुण रोगहरं, विनासगं होइ रोगस्स ।।

दही एवं तेल का योग तथा दूध, दही एवं कांजी का योग विरुध्द होता है । इसी प्रकार कहा गया है कि शाक, मूल, फल, पिण्याक (हींग) कपित्थ, लवण, करीर एवं दही के साथ दूध का सेवन विरुध्द आहार है । दूसरे शब्दों में कहें तो हरी पत्तियों एवं ककड़ी आदि के साथ, मूल (कन्दमूल) आदि के साथ पपीता, अमरुद आदि फलों के साथ, कत्थे एवं नमक के साथ दूध का सेवन उचित नहीं है । विरुध्द आहार करने से आँतों को कठिनाई होती है, पाचन क्रिया सरल नहीं होती एवं दुष्प्रभाव भी देखा जाता है । दूध के साथ

नमक का सेवन करने से शरीर पर सफेद दाग उत्पन्न हो जाते हैं । कहा गया है - 'अहिताशनसम्पर्कोबहु-रोगोद्भवो यत: । तस्मात्तदहितं पथ्यं, न्याय्यं पथ्यनिषेवणम्।।'' अहितकारी भोजन के सम्पर्क से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, अत: अहितकारी का त्याग कर हितकर भोजन करना चाहिए ।

मिताहार के सम्बन्ध में ओघनिर्युक्ति में ही कहा गया है कि उदर के छह भाग मानकर उसके तीन भाग में अशन, ग्रहण किया जाए, दो भाग पानी के लिए एवं एक भाग वायु संचरण के लिए छोड़ा जाए । अधिक शीतकाल में अशन के चार भाग एवं पानी का एक भाग तथा तीव्र ग्रीष्मकाल में दो भाग अशन के एवं दो या तीन भाग पानी के रखे जाएँ । वायु संचरण के लिए एक भाग हर ऋतु में रखना चाहिए । अत्युष्णकाल में पानी की अधिक आवश्यकता रहती है ।

रत्नत्रय की साधना

जैन धर्म में दृष्टि एवं सोच को सम्यक् बनाने की प्रेरणा दी गई है । जीवन किस प्रकार रोगमुक्त रहकर जीया जाए, इसके लिए सही दृष्टि का विकास करना होता है तथा रोगोत्पत्ति के कारणों को ठीक से जानकर उनका परिहार करना होता है । प्रत्येक रोग का कोई न कोई कारण अवश्य होता है । उस कारण का पहले ही परिहार कर दिया जाए तो रोग उत्पन्न ही न हो । यदि उत्पन्न हो गया है तो सही बोध एवं औषधि के साथ उसका उपचार भी किया जाए ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र स्वरुप रत्नत्रय की साधना जहाँ मोक्ष का मार्ग है वहाँ वह मनुष्य को त्रिविध स्वास्थ्य भी प्रदान करती है । सम्यगदृष्टि व्यक्ति आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर स्वस्थ होने में अपना हित समझता है । वह सम्यग्ज्ञान के कारण यह जानता है कि भोग जहाँ रोग का कारण है वहाँ योग व्यक्ति को स्वास्थ्य प्रदान करता है । सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान से युक्त व्यक्ति आत्मिक स्तर पर क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि विकारों को अहितकर मानता है तथा उनके त्याग में अपना हित मानता है । सम्यक् चारित्र से युक्त होने पर वह इन विकारों का परिहार करता है । वह इनके उत्पन्न होने के कारणों का भी परिहार करता है, जिससे वह न केवल आत्मिक स्तर पर अपितु मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर भी स्वस्थ रहता है । आधुनिक चिकित्सा शास्त्र जहाँ रोग के शारीरिक कारणों का ही उपचार करते हैं, वहाँ जैन दर्शन में प्रतिपादित रत्नत्रय की साधना आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक तीनों स्तरों पर रोग का समाधान करती है, रोग उत्पन्न ही न हो, इसकी व्यवस्था करती है ।

यह कोई विश्वास करे या न करे, किन्तु जैन धर्म में जो जीवन शैली एवं तपश्चरण का प्रावधान है वह आत्मिक उन्नयन के साथ तन एवं मन को भी स्वस्थ बनाता है । जैन जीवन में अनशन आदि तप, रात्रिभोजन- त्याग, मांस-मदिरा का परिहार आदि इसमें सहायक हैं । यहाँ जैन जीवन शैली के आधार पर कतिपय बिन्दु प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

मांसाहार का त्याग

जैन जीवन शैली में मांसाहार को पूर्णत: त्याज्य निरुपित किया गया है । सप्त कुव्यसनों में मांसाहार को भी कुव्यसन की श्रेणी में रखकर इसे पूर्णत: हेय बताया गया है । विश्व में अब मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार एवं वीगन पर बल प्रदान किया जा रहा है । अध्ययनों के अनुसार मांस सेवन के कारण मधुमेह एवं हृदय की बीमारी का खतरा बढ़ता है । मांस में सेचुरेटेड वसा अधिक होती है, अत: कॉलेस्ट्रॉल बढ़ने के कारण रक्तचाप भी बढ़ता है । जिस पशु का मांस है, उसे यदि कोई रोग है तो उस रोग के संक्रान्त होने का भी खतरा रहता है । मांस सेवन मानवता एवं करुणा की दृष्टि से तो हेय है ही, किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह पूर्णत: त्याज्य है । शाकाहार में भी वह प्रोटीन प्राप्त हो जाता है जो मांसाहार से प्राप्त होता है । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रोसेस्ड मीट से कैंसर की भी सम्भावना

रहती है । मांसाहारियों की अपेक्षा शाकाहारियों में कैंसर ४० प्रतिशत कम माना गया है - Large studies in England and Germany showed that vegetarians were about 40 percent less likely to develop cancer compared to meat-eaters. यह कैंसर स्तन, प्रोस्टेट एवं रेक्टम में अधिक होता है । पशु में जो हार्मोन इंजेक्ट किए जाते हैं, उसका मांस भी स्वास्थ्य को विकृत करता है ।

मांसाहार का परिहार करने पर शाकाहार ही श्रेष्ठ आहार है, जो शरीर के पोषण के लिए पर्याप्त विटामिन, प्रोटीन, फास्फोरस एवं अन्य आवश्यक तत्त्व प्रदान करता है । जैन जीवन शैली में 'जैन भोजन' की अवधारणा और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें तामसिक आहार का निषेध है । प्याज, लहसुन आदि के साथ आलू आदि का भी निषेध है । चित्त की प्रसन्नता तथा शरीर में सक्रियता के लिए सात्त्विक आहार ही अधिक उचित है जो शरीर को समस्त आवश्यक तत्त्व उपलब्ध करा देता है । शाकाहार भी भूख के अनुसार हो, अधिक न हो, क्योंकि अतिभोजन के रुप में यह भी पाचन तन्त्र पर भार डालता है ।

मदिरा का त्याग

कुछ लोग शौक से मदिरा पान करते हैं, तो कुछ लोग अपनी चिन्ताओं एवं मानसिक क्लेशों से बचने के लिए मदिरापान करते हैं । मदिरा से चित्त एवं शरीर दोनों विकृत होते है । शरीर पर अल्कोहल के अनेक दुष्प्रभाव बताए गए हैं । अल्कोहल के अधिक सेवन से लीवर एवं पैंक्रियाज रोग ग्रस्त हो जाते हैं । इनके अतिरिक्त हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क एवं नर्वस सिस्टम भी प्रभावित होते हैं । मदिरा या अन्य हेरोइन आदि के नशे की आदत हो जाने पर व्यक्ति इतना गुलाम हो जाता है । पाचन तन्त्र गड़बड़ होने से शरीर पोषक तत्त्व ग्रहण नहीं कर पाता है । पेचिश, अल्सर एवं उच्च रक्तचाप की भी सम्भावना रहती है । मधुमेह रोग भी उत्पन्न होने का खतरा रहता है, क्योंकि पैंक्रियाज की कार्य प्रणाली मदिरा से प्रभावित होती है । अफीम, गांजा, हेरोइन आदि अन्य मादक पदार्थ भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं । तम्बाकू, धूम्रपान, गुटका आदि भी शरीर को प्रदूषित करते हैं तथा कैंसर उत्पन्न करने में निमित्त बनते हैं ।

जैन जीवनशैली इन सबके सेवन से दूर रखती है, अत: इनसे जन्य शारीरिक रोगों से सरलतया बचा जा सकता है । (क्रमश:) ●

महापुरुष वही जो समस्याओं पर विजय प्राप्त करे

लेखक : आचार्य श्री ज्ञानसागरजी म.सा.

आत्म चैतन्य एवं दिव्य रुप है । वह अमर एवं शाश्वत है । जिसने इसको पवित्र बनाने का सम्यक् प्रयास किया है, उसे न विपत्तियों का भय है और न किसी अन्य बाधा का । शास्त्रों में समस्याओं एवं विपदाओं से छुटकारा पाने का विशद वर्णन है । उसका ज्ञान होने से सभी अपने को सँभाल सकते हैं और सही राह पर चलने में सक्षम हो सकते हैं । अच्छे-बुरे में फर्क कर सकते हैं ।

समस्याएँ सभी के जीवन में आती रहती हैं, चाहे वह कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो । परंतु जो समस्याओं पर विजय प्राप्त कर लेता है वही महापुरुष होता है ।

बाह्य वस्तुओं में सुख नहीं, सुख तो अंतर् में है । सच्चा सुख आत्मा से परमात्मा बनने में है । आत्मा की महिमा ही दिव्य ज्योति की पहचान है । जिसने आत्मा का महत्व समझ लिया, वह विपत्तियों पर सहज विजय प्राप्त कर सकता है ।

इष्ट-अनिष्ट के समय मन को दृढ़ रखकर सभी के प्रति सहिष्णु एवं सहनशील होना मानव का वास्तविक कर्तव्य है । ●

जनगणना २०२१ 'जागो जैन जागो'
धर्म, जाती, श्रेणी का कॉलम रिक्त न छोडे

लेखक : महेन्द्र मंडलेचा, चन्द्रपुर, भारतीय जैन संघटना,
राज्य प्रमुख : अल्पसंख्यक विभाग. मो. : ९८२२३६६६०१

सादर जय जिनेंद्र,

आनेवाली जनगणना २०२१ हो या CAA, NRC, NPR हो या स्कूल का Admission रजिस्टर, स्कूल का LC/TC हो या और भी कोई सरकारी, असरकारी फॉर्म हो जिसमें अगर हमें धर्म (Religion), जात (Cast), श्रेणी (Category), भाषा (Language) के बारे में जानकारी माँगी है या देनी है तो जरुर दे और जाँच भी ले कि सही लिखा है क्या ।

मेरा नाम महेन्द्र विजयचंद मंडलेचा

१) धर्म (Religion) : जैन (सिर्फ जैन लिखे)
२) जात (Cast) : ओसवाल
(अगरवाल, खंडेलवाल, सैतवाल, पोरवाल, बघेरवाल ऐसी १२० + जैन जाती आते है)
३) श्रेणी (Category) : General
(OBC, SBC, EBC, ST ऐसी कई श्रेणी में जैन आते है)
४) गोत्र (Surname) : मंडलेचा
(मोदी, गांधी, शाह ऐसे सेकडो जैन गोत्र है)
५) भाषा (Language) : हिन्दी
(मारवाडी, गुजराती, मराठी, पंजाबी ऐसी कई भाषा जैन बोलते है)

हमारे भारत देश के पुरातन हम जैन धर्म के धर्मावलम्बि आज देश में अल्पसंख्यक होते जा रहे है । इसलिए हमारे जैन धर्म को स्वतंत्र धर्म और अल्पसंख्यक (Mainority) धर्म का दर्जा भारतीय संविधान के तहत भारत सरकार से २०१४ में मिला है।

भारत देश में जैन धर्म का पालन करने वाले 'चौवीस तीर्थंकर भगवान' के श्वेताम्बर, दिगंबर पंथ के हम अनुयायी की १२०+ जैन जाती है ।

इस १२० + जैन जाती में से कई राज्य या प्रदेश में जैन जाती के ज्यादातर अनुयायी की श्रेणी (Category) सामान्य (General) में आती है । और कुछ जैन अनुयायी की जाती को वहाँ की राज्य सरकार ने OBC (Other Backwards Class), SBC (Sub Backwards Class) या अन्य श्रेणी का दर्जा दिया है । आज देश में ३०% से भी कम जैन परिवार सम्पन्न है । यह हम सब को मालूम है लेकिन हम सही हालात को आज भी स्वीकार नहीं कर पा रहे है ।

सम्पन्न परिवार की सोच है कि हम सभी जैन सम्पन्न है... हमें दूसरों से सहायता लेने, माँगने की क्या जरुरत है ? वह इस भ्रम में है और जैन समाज के सही हालत से अज्ञान है या सही हलात को अभी भी छुपा रहे है यह कडवा सच है ? अब न तो हम भ्रम में रहे और ना ही अन्य जैन परिवार को भ्रमित करे ।

जनगणना या कोई भी बिल आया हो इसमें धर्म, जाती, श्रेणी, भाषा, गोत्र की सही परिवारीक जानकारी लिखना, देना हमारे लिए महत्त्वपूर्ण और बहुत जरुरी है ।

भारत सरकार की ओरसे CAA, NPR, NRC और जनगणना २०२१ करने की घोषणा की गई है ?

धर्म (Religion) के कॉलम में सिर्फ 'जैन' ही लिखे 'जैन' लिखना ही महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि धर्म के कॉलम में सिर्फ 'जैन' लिखने से ही जैन धर्म की सही जनगणना होगी । जैन के आगे-पिछे और कुछ भी ना लिखे । जैन के आगे-पिछे और कुछ लिखने से

आपकी गणना जैन धर्म में नहीं होगी । धर्म के कॉलम में सिर्फ जैन लिखने से देश में जैन धर्म के अनुयायी की जनसंख्या की सही जानकारी सरकार को और हम सब को मिलेगी ।

जाती (Cast) लिखना महत्त्वपूर्ण है । आप कौनसे जाती (१२०+ जैन जाती है) से है वह लिखे । आपकी जाती लिखने से किसको आरक्षण या सुविधा दी गई है या और भी कौनसे जाती को आरक्षण दे सकते है या फायदा, सुविधा दे सकते है यह सरकार द्वारा सोचा जायेगा । देश में जैन धर्म की कितनी जाती है सरकार को और हम सब को सही जानकारी मिल जायेगी ।

श्रेणी (Category) लिखना महत्त्वपूर्ण है । आप कौनसे श्रेणी में है General, OBC, SBC इसकी जानकारी आपको होगी । जो श्रेणी में आप है वही श्रेणी लिखे देश में जैन धर्म के अनुयायी कौनसे श्रेणी (Category) में है । उनके जनसंख्या के हिसाब से सरकार द्वारा योजना बनाई जा सकती है और भी जरुरतमंद जैन को भविष्य में सुविधा भी दी जा सकती है । देश में जैन धर्म की कितनी जाती कौनसे श्रेणी में आती है सरकार को और हम सब को सही जानकारी मिल जायेगी ।

गोत्र (Surname) लिखना महत्त्वपूर्ण है । हमारे नाम के पीछे गौत्र (Surname) लिखने से देश में जैन धर्म के कितने गोत्र (Surname) है सरकार को और हम सब को भी सही जानकारी मिल जायेगी ।

भाषा (Language) लिखना महत्त्वपूर्ण है । देश में कितने जैन कौनसी कौनसी भाषा का उपयोग करते है इसकि जानकारी सरकार को और हम सब को मिलेगी ।

संविधान के तहत धार्मिक, अल्पसंख्यक और भाषिक अल्पसंख्यक का हक भारतीय नागरिक को मिला है । महाराष्ट्र राज्य में मराठी भाषी बहुसंख्यक है और हिन्दी भाषी अल्पसंख्यक है । राज्य के कई नामांकित स्कूल, कॉलेज, धर्म और भाषा के अधार पर रजिस्टर हुये है वहाँ पर उस धर्म/भाषा के विद्यार्थीयों को Admission की सुविधा मिलती है ।

नागपुर का प्रसिध्द रामदेवबाबा इंजिनिअरिंग कॉलेज हिन्दी भाषी विद्यार्थी के लिए अरक्षित रहता है।

जैन समाज को भ्रमित ओर गुमराह किया जा रहा है उनसे सावधान रहे । यह कह कर कि... जाती और धर्म के कॉलम में दोनों जगह 'जैन' लिखें । (Surname) (गोत्र) न लिखें सिर्फ 'जैन' लिखें । यह सब गलत प्रचार किया जा रहा है इसका ध्यान रखें । अब ऐसा करने से आपके सरकारी दस्तावेज में मुश्किलें आ सकती है । आप आज तक जो नाम सरकारी दस्तावेज में चलते आ रहा है वही पुरा नाम (खुदका, पिताजी का नाम और सरनेम लिख रहे है) वही लिखे कोई बदलाव न करे ।

भविष्य में OBC/SBC की तरह EBC या समान्य (General/Open) जैन जाती को भी सुविधा मिल सकती हैं ?

आज महाराष्ट्र राज्य में दिगम्बर जैन जाती में से सैतवाल, कासार, नाई, शिंपी, भावसार, लाड, गुरव (OBC) कोष्टी (SBC) या और भी जैन जाती को तथा अन्य कई राज्यों में भी जैन जाती को OBC, SBC, EBC, ST का दर्जा मिला है । इन जैन जातीयों के आरक्षण का फायदा शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक, राजकिय क्षेत्र (चुनाव, स्कॉलरशिप, स्कूल, कॉलेज एडमिशन, आर्थीक सहयोग, सुरक्षा) में मिलता है ।

'जैन समाज के हित में यह जानकारी लगातार हर ग्रुप में फॉरवर्ड करते रहें । हर जैन के मोबाईल में और घर तक यह जानकारी पहुँचनी ही चाहिए ।

अधिक जानकारी के लिए हमसे आप संपर्क कर सकते है ।

मो. : ९८२२३६६६०१
E-mail : mahendramandlecha@gmail.com

सफल होना है तो

बच्चों का भविष्य आपके हाथ

लेखक : श्री चंद्रप्रभजी म.सा.

* बच्चे ईश्वर का प्रसाद हैं और आपकी अनमोल धरोहर । उन्हें ऐसा अमृत सिंचन और आशीर्वाद दीजिए कि आने वाला कल उनके लिए सुगंध भरी सुबह साबित हो ।
* आपका घर आपके बच्चों की पहली पाठशाला है। अपने घर का वातावरण इतना सुव्यवस्थित और सुमधुर रखिए कि उसकी उजास, आपके बच्चों की भाषा और व्यवहार से प्रकट हो ।
* किसी के द्वारा यह पूछने पर कि बेटा, क्या घर में तुम्हारे पापा हैं ?
* आपकी ओर से यह कहना कि - कह दो घर में पापा नहीं हैं, बच्चों को झूठ, छल और चोरी करने के लिए उत्साहित करता है ।
* बच्चों का दिमाग किसी मूवी कैमरे की तरह है । वे आपको वापस वही दिखाएँगे जो उनके कैमरे में दर्ज हुआ है । उनके सामने कभी गाली-गलौज या छलभरा बर्ताव न करें, अन्यथा उनके अश्लील और असभ्य आचरण के उत्तरदायी आप होंगे ।
* बच्चों पर केवल धन ही खर्च मत कीजिए, वरन् अपने बेशकीमती समय का भी निवेश कीजिए । याद रखिए, व्यापार अपनी जगह है, पर बच्चों के प्रति आपके कुछ महान कर्त्तव्य भी हैं, जिन्हें पूरा करके आप एक आदरणीय पिता की भूमिका अवश्य निभाएँ ।
* उत्तम पिता वह नहीं है जो संतान को विरासत में सम्पत्ति दे, वरन् वह पिता उत्तम है जो संतान को श्रेष्ठ संस्कार दे । चोर और बिगड़ी हुई संतान का पिता कहलाने की बजाय बांझ या नपुंसक कहलाना ज्यादा श्रेष्ठ है ।
* संतान यह विवेक रखें कि माता-पिता की उपेक्षा करके कबूतरों को दिया गया दाना और मंदिर में किया गया अभिषेक कभी पुण्यमयी नहीं हो सकेगा। जिन्होंने हमें जीवन दिया और जीवन के आधार भी, उनके सुख-दुख के सहभागी बनकर ही हम आने वाली पीढ़ी के लिए 'माइतों की पुण्याई' की पूंजी छोड़कर जा सकेंगे ।
* अपने से छोटों को कोरे बड़े-बड़े उपदेश या भाषण मत दीजिए । जो आप उनसे कहना चाहते हैं उसे स्वयं करके उनके लिए आदर्श उदाहरण बनिये हैं छोटे स्वत: आपसे प्रेरणा की किरण प्राप्त कर चुके होंगे ।
* यदि आप चाहते हैं कि आप श्रवणकुमार के पिता कहलाए, तो इसके लिए जरुरी है कि आप स्वयं श्रवणकुमार बनकर अपने माता-पिता के प्रति अपने दायित्व निभाना शुरु कर दीजिए ।
* बच्चों को पढ़ा-लिखाकर लायक बनाए, पर उस तरह का लायक भी न बनाए कि वे आपके प्रति ही नालायक साबित हो जाएँ ।
* संतान से वापसी की अपेक्षा न रखें, तरुवर और सरोवर की तरह उन पर अपना स्वत्व लुटाएँ । आप केवल आज को महान् बनाए, आने वाला कल स्वत: अपनी महानता दरशाएगा ।
* यह अच्छी बात है कि आपका बच्चा ८०% अंक लाता है, पर यदि पढ़ाई की व्यस्तता में उसे मुस्कुराने का भी वक्त नहीं मिलता, तो ध्यान रखिए बच्चों की मुस्कान ८०% मार्क्स से भी ज्यादा कीमती है । ●

जैन समाजात सर्वांत जास्त खपाचे व लोकप्रिय मासिक

जैन जागृति

सेवा–सहयोग–संघटन

विश्वकल्याण प्रतिष्ठान, पुणे

देहदान – जन जागृती ● मरणोत्तर देहदानाचे इच्छापत्र

जगता जगता रक्तदान, जाता जाता अवयवदान
मरणोत्तर नेत्रदान, देहदान, देहदान, देहदान

प. पूज्य आचार्य भगवंत विश्वकल्याण विजयजी गुरु महाराजांच्या प्रेरणेने विविध सामाजिक कार्य व दरवर्षी रक्तदान शिबिर घेत आलो आहोत. आमच्या विश्वकल्याण प्रतिष्ठानच्या २१ व्या वर्षात पदार्पणा निमित्ते आम्ही विश्वकल्याण प्रतिष्ठान, लव केअर शेअर फाऊंडेशन, पद्मावतीनगर ज्येष्ठ नागरिक संघ यांच्या संयुक्त विद्यमाने देहदानाची संकल्पना राबविण्याचे व जनजागृती करण्याचे ठरविले आहे. काही व्यक्ति धार्मिक, कार्यक्रम निमित्त, शुभकार्य तसेच आपल्या प्रियजनांच्या स्मृती प्रित्यर्थ (जयंती/पुण्यतिथी) निमित्त रोख अथवा वस्तू स्वरुप दान करीत आल्या आहेत. काही व्यक्ती व ज्येष्ठ नागरिक संघानी एवढे २१ वर्षे तुम्ही समाजकार्य करित आला आहात तर आता देहदानाचा उपक्रम का राबवत नाही ? अशी विचारणा करुन नवीन समाजिक कार्य करण्याची दिशा दाखवली व आमचा अर्ज घेऊन शुभारंभ करावा असा आशीर्वाद रुपी प्रतिसाद दिला. झपाटल्या प्रमाणे आम्ही सर्वजण कामाला लागतो. भारती वैद्यकीय महाविद्यापिठाचे अँनाटॉमी विभाग प्रमुख डॉ. राजेंद्र गरुड सरांच्या अनमोल मार्गदर्शनाखाली व सखोल चर्चेनंतर आमचा पुढचा मार्ग सुलभ व सोपा झाला.

खर तर या शुभ कार्यास गणेश मंडळे, नवरात्र मंडळे, भजनी मंडळे, तसेच महिला मंडळे व बचत गटांनी त्यांच्या उपक्रमात तसेच वार्षिक अहवालातून या सत्कार्याचा प्रचार व प्रचार करावा ही नम्र विनंती. पूर्वीच्या वेळी साथीचे व संसर्गजन्य रोगांमुळे गावच्या गावे मृत्युमुखी पडून गावे ओस पडायची. कारण तेव्हा प्रगत वैद्यकीय शास्त्र व औषध उपलब्ध नव्हती.

वैदुलोक व झाडपाल्याच्या औषधांचे जुने जाणकार लोक ''आजीबाईचा बटवा'' या संकल्पने प्रमाणे उपचार करुन काही प्रमाणात का होईना जीव वाचवायचे. शास्त्रज्ञांनी आपल्या अथक व अविश्रांतपणे प्रयत्न करुन औषधांचा शोध लावून मानवी जीवन आनंदी, सुखकर व सुसहाय्य करण्याचा प्रयत्न करत आले आहेत, पण त्या शोधाच्या चाचण्या घेण्यासाठी ससा, उंदिर व घोडेचं उपलब्ध असायचे त्यामुळे पुढील चाचण्या करताना वेळ लागत असे. आता मानवी देह उपलब्ध होऊ लागल्याने तपासण्या पूर्वीपेक्षा वेगाने होऊन नवनवीन औषधे बाजारात येऊ लागली आहेत. ''कालाय तस्मै नम:'' या उक्तप्रमाणे मनुष्य प्राणी स्वत:मध्ये वैचारिक बदल घडवित आला आहे. यालाच अनुसरुन आधुनिकता व काळाची गरज ओळखून काही सुज्ञ व सामाजिक बांधिलकी जपणारे ज्येष्ठ नागरिक व सजग युवा पिढी ''देहदान'' करण्यासाठी पुढे येत आहे, हे खरंच खुप कौतुकास्पद व स्वागताही आहे.

देहदान करु इच्छिणाऱ्या व्यक्तीने छापील अर्ज भरुन देऊन त्या सोबत १) स्वत:चा एक फोटो, २) आधार व पॅनकार्ड झेरॉक्स, ३) दूरध्वनी/मोबा. नं., ४) घरातील दोन नातेवाईकांची सही व मोबा. नं. लिहून तो अर्ज नजीकच्या महारुग्णालय/वैद्यकीय महाविद्यालयात किंवा आमच्या विश्वकल्याण प्रतिष्ठान, धनकवडी येथे द्यावा. नंतर आपणास उत्तरा

दाखल आलेल्या पत्रात तुमचा रजिस्ट्रेशन नंबर उल्लेख केलेला असतो. तो खूप महत्त्वाचा आहे म्हणून त्याची झेरॉक्स काढून आपल्या वैद्यकीय पेपरच्या फाईलमध्ये ठेऊन, त्याची कल्पना आपल्या घरातील व्यक्तींना देणे आवश्यक आहे. सदर व्यक्तीचे देहदान (मृत्यु झाल्यानंतर) १) तपासणी करणाऱ्या डॉक्टरांचा मृत्यूचा दाखला. २) म.न.पा. / ग्रामपंचायतचा मृत्युचा दाखला घ्यावा. (सदर पास घेतेवेळी अग्निदान किंवा देहदान या रकान्यात आपण न विसरता देहदान करणार आहोत हे सांगणे व संबधित महारुग्णालयाचे नामोउल्लेख करणे खूप महत्त्वपूर्ण व गरजेचे आहे. ३) मृत वार्ता देणाऱ्या व्यक्तीने त्यांचा आधार/पॅनकार्ड झेरॉक्सची एक प्रत व (मोबा. नं. त्यावरती नमूद करावा) सदरच्या रुग्णालयात देणे गरजेचं आहे.

मृत्युनंतर १-२ तासात नजीकच्या नेत्रपेढी/नेत्रा रुग्णालयास मृत वार्ता कळवून नेत्रदान करता येते. फक्त मृतदेह थंडाव्याच्या ठिकाणी ठेवावा, मानेखाली चादरीची घडी घालून ठेवावी, डोळ्यांवर ओल्या कापडाच्या/कापसाच्या पट्ट्या ठेवाव्या. या मरणोत्तर नेत्रदानाने आपण दुसऱ्या दिवशी दोन रुग्णांना हे सुंदर जग पाहण्याची अनमोल संधी देऊन दृष्टी रुपाने अजरामर होत. जर बाहेरगावातील आप्तेष्ट, मित्र परिवार उशिरा येणार असतील, तर मृतदेह महारुग्णालयातील शितपेटीत ठेऊन नातेवाईकांच्या सोईप्रमाणे रुग्णालयाच्या व्यवस्थापक बरोबर चर्चा विनिमय करुन अंतिम दर्शनाची वेळ ठरवून घेऊन त्याचा पास घ्यावा. अंतिम दर्शन झाल्यावर तिथे कोणत्याही प्रकारची विधी करता येत नाही, कृपया याची सर्वांनी नोंद घ्यावी व सहकार्य करावे, ही नम्र विनंती. वैद्यकीय रुग्णवाहिका त्यावेळेस उपलब्ध असेल तर रुग्णवाहिका व शीतपेटीचे कुठलेही पैसे आकारले जात नाही. अंतिम दर्शनानंतर मृत देहात ३-४ लिटर फॉर्मोलीन (formalin) हे रसायन सोडून मृतदेह जतन करुन वैद्यकीय विद्यार्थी/शिकाऊ डॉक्टर यांना अभ्यासासाठी व संशोधनासाठी दिला जातो.

देहदान कोण करु शकत नाही ? १) खूप दिवस आजारामुळे बिछान्यावर झोपून पाठीला जखमा (बेड सोर्स) झालेला मृतदेह. २) पाण्यात बुडून मृत्यू, भाजून मृत्यू, विषबाधेमुळे झालेला मृत्यु शवविच्छेदन करायला लागलेला मृतदेह. ३) कॅन्सर, टी.बी., एडस्, काविळ, डेंग्यू या रोगांमुळे आलेल्या मृत्यूचा मृतदेह. ४) मोठ्या शस्त्रक्रियेनंतर सर्व प्रक्रिया पूर्ण झाल्यानंतर आलेल्या मृत्यूचा मृतदेह. ५) त्वचा दान, अवयव दान केलेला मृतदेह व ६) बरेच दिवस अन्न, पाणी त्याग (उपवास/संथारा व्रत) करुन आलेल्या मृत्यूचा मृत देहदानास स्विकारता येत नाही. काही ठिकाणी देहदानानंतर भारतीय प्राचीन संस्कृती प्रमाणे दान वृत्तीची कास धरत काही सुज्ञ-आधुनिक विचारवंतांनी देहदानानंतर पुढील विधीच्या ऐवजी गोरगरीब, अनाथ, गरजू कुटुंब, वृध्दाश्रम तसेच पैश्या अभावी मोठ्या शस्त्रक्रिया थांबलेल्या गरजू रुग्णांना मदत केलेल्या बातम्या वाचण्यात व पाहण्यात येत आहे. या रुपाने मानव जातीची सेवा करुन सदर व्यक्तीला देहदानच्या महान कार्या सोबत समाजसेवेने अजरामर करुन श्रध्दांजली अर्पित करत आहोत हे खरंच खूपच छान सत्कर्म व महानदान आहे.

या उपक्रमातून आम्हांला कोणत्याही व्यक्ती, संस्था, धर्म, पंथाच्या भावना दु:खविण्याचा यात किंचितही हेतू नाही, हे आम्ही प्रामाणिकपणाने नमूद करित आहोत. त्याबाबत कोणीही गैरसमज करुन घेऊ नये, असे निवेदन करीत आहोत, याची कृपया सर्वांनी नोंद घ्यावी, यातील बऱ्याच गोष्टी लोकांना माहिती आहेत, परंतु एकत्रित करुन सांगण्याचा आमचा छोटासा प्रामाणिक प्रयत्न आहे.

देहदानाचे फॉर्म : विश्वकल्याण प्रतिष्ठान C/o. शहा मेडिकल्स, कोणार्क विहार समोर, के. के. मार्केट, धनकवडी, पुणे ४३ येथे उपलब्ध केले आहे. फोन नं. ०२०-२४३७९६२२, ९८५०५८०९६९

मरणोत्तर देहदानाचे इच्छापत्र

दिनांक / /

प्रति,

माझे सर्व कायदेशीर वारस,

आणि माझ्या मृत्युच्या वेळी हजर असलेले

आप्तस्वकीय व मित्र परिवार

मी श्री./श्रीमती .....

राज्यातील रहिवाशी, राहणार .....

असे इच्छापत्र लिहून देतो/देते की मृत्युनंतर माझा मृतदेह (हॉस्पिटलचे नाव पत्ता)

.....

.....

यांचेकडे हस्तांतरित करण्यात यावा अशी माझी इच्छा आहे.

मृत्यु नंतर माझ्या मृतदेहाचा संशोधन/विच्छेदन वा इतर आवश्यक असलेल्या कोणत्याही हेतू करिता उपयोग करण्याबाबत माझी हरकत नाही. त्याप्रमाणे मृतदेहातील अवयवांचा उपयोग रोपणक्रिया करण्यास हरकत नाही.

इच्छापत्र लिहून देणाऱ्याची सही

दिनांक :

सदर इच्छापत्र आमच्या उपस्थितीत लिहून देण्यात आले आहे.

१) नाव.....

पत्ता .....

.....

सही.....

२) नाव.....

पत्ता .....

.....

सही.....

क्रोध

प्रेषक : श्री. मगनचन्द जैन

क्रोध कषाय है, विभाव है विकार है ।

मानव के सौन्दर्य को, विद्रूपता में बदलने का कारण है ।

क्रोध से तन तपता है, मन जलता है, उफनता है।

मुख की मुस्कान को,

कालिमा की लालिमा में बदलता है ।

चेहरा भयंकर लगता है, रक्त प्रवाह बढ़कर ताप बढ़ता है ।

आँखों से अंगार बरसकर, भौंहें तन कर आवेश चढ़ता है ।

फिर सामने वाले पर प्रहार होता है,

अपना-पराया नहीं सूझता है ।

विवेक को विनष्ट करके, जड़ता का विकास करता है ।

पर को पीड़ित करके, स्वयं को सुखी समझता है।

अपनी इच्छापूर्ति हेतु, दूसरों का दमन करता है ।

अत: क्रोध पर नियंत्रण कीजिए,

क्योंकि यह प्रेम-प्रीति-नष्ट करता है ।

वैर-घृणा के बीज बोकर, मानव की शान्ति छीनता है । •

नेत्रदान - देहदान

अंधेरी जिंदगियों को रोशन कर सकते हैं आप भी

☺☹☺ हास्य जागृति ☺☹☺

संकलन : श्री. नेमीचंदजी रांका, नाशिक

घड्याळ

मनिषने तीन हजाराचे किंमती घड्याळ वडिलांसाठी आणले. पण फार खर्च केलेला त्यांना आवडत नाही म्हणून तीनशे रुपये किंमत सांगितली, दुसऱ्या दिवशी फिरायला जाऊन परत आल्यावर मनिषचे वडील म्हणाले, ''अरे काल तू दिलेले घड्याळ ऐकाने पाचशे रुपयाला घेतले. आणखी पन्नास जणांनी मला ॲडव्हान्स दिला आहे. उद्या ती अशी पन्नास घड्याळे घेऊन ये.''

तक्रार

रेल्वेतील कारकून आपल्या साहेबाला म्हणाला, ''या आणखी एका शेतकऱ्याने गायीच्या संदर्भात रेल्वेला कोर्टात खेचले आहे.''

''आपल्या एखाद्या गाडीने त्याच्या गायीला उडवलेलं दिसतंय. ती गाय बिचारी बहुतेक मेली असावी.''

''नाही, तसं नाही साहेब. त्याची तक्रार वेगळीच आहे. तो म्हणतो की, दोन स्टेशनांच्या मध्ये आपल्या गाड्या इतक्या हळू चालतात की प्रवासी चक्क खाली उतरुन गायीचं दूध काढतात आणि पुन्हा गाडी पकडतात.''

कोर्ट

न्यायालयात प्रथमच आलेल्या आरोपीला न्यायाधीश कोर्टाची पध्दत समजावून देत होते.

''येथे तुला गीतेवर हात ठेवून खरं बोलण्याची शपथ घ्यावी लागेल.''

''होय साहेब.''

''आणि शपथ घेतल्यावरही तू खोटं बोललास तर काय होईल माहीत आहे ना ?''

''होय साहेब. माझ्या वकीलानं सांगितलंय मला.''

''काय होईल ?''

''मी सहीसलामत या केसमधून सुटेन.''

खोटं

उपवर वर-वधू एकमेकांच्या आवडीनिवडी, स्वभाव माहीत व्हावा म्हणून भेटतात. मुलगी मुलाला विचारते, 'तू दारु पितोस का ?' मुलगा म्हणतो नाही. पुन्हा ती विचारते, 'सिगरेट ओढतोस का ?' मुलगा म्हणतो, नाही. मुलगी म्हणते, 'गुटखा खातोस का ? मुलगा म्हणतो, नाही. मुलगी म्हणते, 'चांगले आहे म्हणजे तुम्हाला एकही वाईट सवय नाही तर !' मुलगा म्हणतो, 'नाही तसे नाही एक वाईट सवय आहे ना !' मुलगी विचारते, 'कोणती ?' मुलगा उत्तरतो 'खोटे बोलण्याची.'

गाणे

विचित्र आवाजात गाणे म्हणताच एका श्रोत्याने रागाच्या भरात चप्पल फेकून मारली. या प्रकाराने घाबरुन गायक परत जायला लागला, तेवढ्यात ऑक्रेस्ट्राचा मॅनेजर म्हणाला, ''अरे दुसरे गाणे म्हण, म्हणजे दुसरी चप्पलही मिळेल ।''

झोप

'गणपतरावांना झोपेत बोलण्याची सवय आहे आणि पुन्हा ते रोज दुपारी अर्धा तास ऑफीसमध्ये झोपतात.''

गणपतरावांच्या सहकाऱ्याने मॅनेजरकडे तक्रार केली. ''मला माहीत आहे त्यांची सवय, पण त्यामुळे अनेकांच्या भानगडी मला आपोआप कळतात.'' मॅनेजरने खुलासा केला.

प्रॉब्लेम

दोन मैत्रिणी गप्पा मारत होत्या. पहिली : काय गं, तू अजून लग्न का नाही केलंस ?

दुसरी : लग्न तर करायचं गं, पण मनासारखा नवराच मिळत नाही.

पहिली : हो ना... माझं लग्न झालंय. पण माझाही तोच प्रॉब्लेम आहे. ●

भारतातील विक्रमी महिलांची नावे

प्रेषक : सुरेखा राजेन्द्र बोरुंदिया,
विश्रांतवाडी, पुणे. मो. ८४८२८३४४४२

१) इंदिरा गांधी : भारताच्या पहिल्या महिला पंतप्रधान (१९६७-७७) (१९८०-८४), तसेच भारतरत्न विजेती पहिली भारतीय महिला.

२) विजयालक्ष्मी पंडीत : संयुक्त राष्ट्र संघ (युनो) आमसभेची पहिली भारतीय आणि जगातील पहिली महिला अध्यक्षा (१९५४).

३) सी. बी. मुथम्मा : पहिली महिला राजदूत

४) सरोजिनी नायडू : पहिली महिला राज्यपाल (उत्तर प्रदेश).

५) सुचेता कृपलानी : पहिली महिला मुख्यमंत्री (उत्तर प्रदेश).

६) राजकुमारी अमृत कौर : पहिली महिला केंद्रीय मंत्री.

७) सुलोचना मोदी : पहिली भारतीय महिला महापौर.

८) सावित्रीबाई फुले : पहिली महिला शिक्षिका - मुख्याध्यापिका.

९) फातिमाबिबी मिरासाहेब : भारताच्या सर्वोच्च न्यायालयातील पहिली महिला न्यायाधीश (१९८९).

१०) कार्नेलिया सोराबजी : पहिली भारतीय महिला बॅरिस्टर.

११) हंसाबेन मेहता : भारतातील पहिली महिला उपकुलगुरु (महाराजा सयाजीराव विद्यापीठ, बडोदे).

१२) मदर टेरेसा : नोबेल पारितोषक विजेती पहिली भारतीय महिला (१९७९).

१३) अरुंधती रॉय बुकर : पारितोषक विजेती पहिली भारतीय महिला (१९९७).

१४) भानू अथय्या : ऑस्कर पुरस्कार विजेती पहिली भारतीय महिला.

१५) मंजुळा पद्मनाभन : व्यंग चित्रकार, संडे ऑब्जर्व्हर. पहिली भारतीय महिला (१९८२)

१६) कमला सोहोनी : केंब्रिज विद्यापिठाची पीएच.डी. मिळविणारी पहिली भारतीय महिला शास्त्रज्ञ.

१७) डॉ. आनंदी गोपाळ जोशी : विदेशात जाऊन वैद्यकीय पदवी संपादन करणारी पहिली भारतीय महिला डॉक्टर.

१८) किरण बेदी : पहिली भारतीय पोलीस सेवा महिला अधिकारी (१९७२).

१९) कल्पना चावला : अंतराळ प्रवास करणारी पहिली भारतीय महिला (१९९७).

२०) बचेंद्री पाल : एव्हरेस्ट सर करणारी पहिली भारतीय महिला गिर्यारोहक (१९८४).

२१) संतोष यादव : दोन वेळा एव्हरेस्ट सर करणारी पहिली भारतीय महिला (गिर्यारोहक).

२२) करनाम मल्लेश्वरी : ऑलिम्पिंक पदक (ब्राँझ) विजेती पहिली, भारतीय महिला मल्ल.

२३) आरती साहा : इंग्लीश खाडी पोहून जाणारी पहिली भारतीय महिला जलतरणपटू.

२४) कॅप्टन चंद्रा : पॅराशूट मधून उडी घेणारी पहिली भारतीय महिला.

२५) संगीता गुजून सक्सेना : युध्दात प्रत्यक्ष भाग घेणारी पहिली भारतीय महिला फ्लॉईंग ऑफीसर.

२६) उज्ज्वला पाटील धर : शिडाच्या नौकेतुन पृथ्वी प्रदक्षिणा करणारी पहिली भारतीय महिला.

२७) डॉ. आदिती पंत : अंटार्क्टिका खंडावर पाऊल ठेवणारी पहिली भारतीय महिला शास्त्रज्ञ.

२८) सुरेखा यादव-भोसले : आशियातील पहिली भारतीय महिला, रेल्वे इंजिन ड्रायव्हर.

२९) देविका राणी रौरिच : दादासाहेब फाळके पुरस्कार विजेती, पहिली भारतीय महिला (१९६९).

३०) रिटा फारिया : पहिली भारतीय मिस वर्ल्ड (१९६६).

३१) सुश्मिता सेन : पहिली भारतीय मिस युनिव्हर्स (१९९४).

३२) डॉ. इंदिरा : हिंदुजा टेस्ट ट्युब बेबी प्रक्रिया करणारी पहिली भारतीय डॉक्टर.

३३) इंदिरा चावडा : भारतात जन्माला आलेली पहिली टेस्ट ट्यूब बेबी.

३४) शीतल महाजन : पॅराशूटच्या मदतीने दोन्ही ध्रुवांवर उडी मारणारी पहिली भारतीय महिला. ●

माझा जन्म

कवी : रमणलाल रामचंद सुराणा,
पंचवटी, नाशिक. मो. ९४०३५१३९५७

सान्निध्य मला
नेहमीच हवे
आयुष्यभराला
ते कामास यावे ।।१।।
लहानपणी
संस्कार-शीस्त लावणाऱ्यांचे
तरुणपणी
सुयोग्य मार्गदर्शन करणाऱ्यांचे ।।२।।
कामकाजाला लागतांना
प्रोत्साहित-प्रभावीत करणाऱ्यांचे
संसारात पडतांना
सर्व संबंधित नातेवाईकांचे ।।३।।
मित्र-परिवारांच्या स्नेहाचे
थोरा मोठ्यांच्या आशीर्वादाचे
योगायोगाने संपर्कात येणाऱ्यांचे
आई-वडीलांच्या कृपाछत्राचे ।।४।।
ऋण फेडण्याचे मिळो वरदान
सहाय्य करण्याचे असो व्रत
प्रसन्न रहाण्याचा जडो छंद
सत्कारणी लागावा जन्म, यासाठी ।।५।।
(आपले) सान्निध्य मला, नेहमीच हवे
आयुष्यभराला, ते कामास यावे ।।६।। ●

अक्षय है अक्षय तृतीया

लेखक : राजेन्द्र सिंह चौधरी, जोधपुर

अक्षय अर्थात् जिसका क्षय नहीं हो या अजर-अमर रहे । जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर पू. श्री ऋषभदेवजी सत्य-अहिंसा का प्रचार करने एवं अपने कर्म बंधनों को तोड़ने के लिए संसार के भौतिक एवं पारिवारिक सुखों का त्याग कर जैन साधुपन स्वीकार कर लिया । उन्होंने करीब छह मास तक घोर तपस्या तथा जीवन प्राप्ति के उद्देश्य पर चिंतन करने के पश्चात् पारणे गोचरी हेतु देशाटन करते रहे, लेकिन जैन गोचरी की पध्दति से जनसाधारण की अनभिज्ञता के कारण प्रभु ने सभी प्रकार की वस्तुएँ देने के जनता के अथक प्रयास के पश्चात् भी सेवन नहीं किया । सत्य और अहिंसा का प्रचार करते-करते जब भगवान आदिनाथ प्रभु हस्तिनापुर पधारे । प्रभु का आगमन सुनकर संपूर्ण नगर दर्शनार्थ उमड़ पड़ा । तब राजकुमार श्रेयांसकुमार भी दर्शन करने गये । श्रेयांसकुमार को प्रभु के दर्शन करते हुए जाति स्मरण ज्ञान हो गया तथा उन्होंने तत्काल शुध्द आहार के रुप में गन्ना (शेरड़ी) इक्षुरस के भरे करीबन एक सौ आठ कुम्भ कलश से पारणा कराया । वैशाख सुदी तृतीया के दिन राजकुमार श्रेयांसकुमार द्वारा कराया यह पारणा अक्षयदान एवं इक्षुरस के पारणे के कारण यह इक्षु तृतीया एवं अक्षय तृतीया के नाम से विख्यात हो गया । लाखों वर्षों से एक ऐसा दिन आज भी हमारे लिए अजूबे से कम नहीं है क्योंकि वही दिन है जो युगों-युगों से आज तक अक्षय यानि अमृत्व के लिए सर्वाधिक शुभ दिन के रुप में मनाया, समझा व पूजा जाता है । भगवान आदिनाथ की यह एक वर्ष २५ दिन की तपस्या रहने से जैन धर्म में इसे वर्षीतप संबोधित किया जाता है। आज भी जैन धर्मावलंबियों द्वारा वर्षीतप की आराधना कर अपने को अहोभागी समझा जाता है । इस तपस्या में एक दिन उपवास और एक दिन एकासणा १३ मास और दस दिन का हो जाता है । इससे तन और मन दोनों स्वस्थ हो जाते हैं । ●

अलग हो अतृप्ति से

लेखक : आचार्य श्री भद्रगुप्तिसुरीजी म.सा.

एक विचार सामने आया : 'तृप्ति से मुक्ति !' जब तक मनुष्य विषयभोग से तृप्त नहीं होता है उसकी मुक्ति नहीं हो पाती ! तर्क दिया गया है : 'यदि मनुष्य विषयभोग से अतृप्त रहता है तो उसको वह अतृप्ति सताती रहती है, अतृप्त का ध्यान नहीं लगता है... ध्यान के बिना मुक्ति नहीं मिलती है।'

विचार प्रस्तुत करने वाले को मैंने कहा : 'भाई, विषयों के उपभोग से कभी तृप्ति संभव है क्या ? तुम मानते हो न कि अतीतकाल में अपनी आत्मा ने अनन्त जन्म लिये, उन जन्मों में अनन्त विषयोपभोग किये, परन्तु क्या तृप्ति हुई ? कब तृप्ति होगी और कब मुक्ति पाओगे ? यदि इस आशा में रहे कि 'मैं खूब वैषयिक सुख भोग लूँ, तृप्ति हो जायेगी और फिर मुक्ति मिल जायेगी।' यह तुम्हारी भ्रमणा होगी।

एक वृध्द पुरुष मृत्यु-शय्या पर सोया था। उसकी पत्नी धर्मपरायण थी। 'पति को मृत्यु के समय गुरुमुख से श्री नवकार मंत्र सुनने को मिल जाय तो पति का परलोक सुधर जाय...' इस भावना से प्रेरित होकर वह मुझे बुलाने आयी, मैं गया। उस वृध्द पुरुष को मैंने नवकार मंत्र सुनाया और उसकी आत्मा को समता-समाधि मिले, वैसे दो शब्द कहे। उस वृध्द पुरुष ने कहा : 'महाराज साहब, एक बात मेरे मन में चिन्ता पैदा कर रही है... अब भी मुझे स्त्री के अंगोपांग देखने की आसक्ति बनी रही है... अब क्या होगा ?' मैंने पूछा : 'क्या जीवन में कभी भी विषय-वासना से मुक्त होने का पुरुषार्थ किया था ? क्या कभी इस मानवदेह की अशुचिता का चिन्तन कर, देहासक्ति को मिटाने का प्रयत्न किया था ?'

उन्होंने कहा : 'नहीं, वैसा तो मैंने कुछ नहीं किया।'

यदि विषयोपभोग से तृप्ति हो जाती तो इस वृध्द पुरुष को तृप्ति हो जानी चाहिए थी। परन्तु तृप्ति नहीं हुई, मृत्यु पर्यंत अतृप्ति बनी रही। आनेवाले भव में गहरी अतृप्ति लेकर जन्मेगा।

तृप्ति से मुक्ति नहीं परन्तु पहले तो अतृप्ति से मन को मुक्त करो। विषयोपभोग करते रहने से कभी भी अतृप्ति मिटेगी नहीं, अतृप्ति की आग विशेष प्रज्वलित होगी। अतृप्ति से मुक्त होने के लिए 'त्याग' का मार्ग स्वीकार करना ही होगा। विषयोपभोग का त्याग करना ही होगा।

जिस विषय का मन से और तन से त्याग किया जाता है, उस विषय का आकर्षण टूट जाता है। दीर्घकालीन विषय-त्याग से विषयासक्ति टूट जाती है। अलबत्ता, त्याग मात्र शरीर से नहीं, मन से भी होना चाहिए। त्याग करने पर, जिस विषय का त्याग किया हो, उस विषय का मानसिक आकर्षण उठ सकता है। परन्तु 'चित्तनिरोध' की सतत साधना करने पर विषयासक्ति मर जाती है।

वैषयिक वासना का स्वीकार मत करो। वासना पर विजय पाने का सदैव पुरुषार्थ करते रहो। विजय पाने में भले ही दो-चार जन्म लेने पड़ें... जनम-जनम तक वासनाओं से लड़ते रहो, वासना अवश्य नष्ट होगी। आत्मा की विजय होगी। आत्मा की वासना पर विजय ही तो मुक्ति है।

आत्मा को आत्मगुणों में तृप्त करें। स्वभाव दशा में तृप्ति का अनुभव करें। आत्मगुणों में तृप्ति पा सकते हो। वैषयिक सुखों में कभी भी तृप्ति नहीं पा सकोगे। आत्मा के ज्ञानगुण में, दर्शनगुण में, चारित्रगुण में तृप्ति पाने का प्रयत्न करें। यह तृप्ति अविनाशी होगी, अखंड होगी। यह तृप्ति पाने पर विषयों की अतृप्ति मिट जायेगी।

तृप्ति से मुक्ति नहीं, अतृप्ति से मुक्ति पाने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न है विषयोपभोग से विरक्ति का। ●

जैन जागृति मासिकात जाहिरात व वर्गणीसाठी संपर्क करा

फोन (०२०) २४२१५५८३, ऑफिस - मो. ८२६२०५६४८० **मो. संजय:९८२२०८६९९७ सुनंदा:९४२३५६२९९१**

Email : jainjagruti1969@gmail.com ● Press Email : prakash.offset@rediffmail.com

◆ जैन जागृतिचे प्रतिनिधी ◆

- **भोसरी, चिंचवड, निगडी –** श्री. चांदमलजी लुंकड - फोन : २७११९९४९, मो. ९९२१९११९४०९, ९४२२८३२८४९
- **पुणे शहर ❖ जळगाव –** श्री. अनील कुचेरिया, मो. : ९७६३६४५०५५
- **गुरूवार पेठ, पुणे –** श्री. जैन पुस्तक भंडार, फोन : २४४७२९५८
- **धनकवडी, पुणे –** श्री. सुरेंद्र हिरालालजी बोरा, मो. ७५८८९४३०१५ / ९३७३६८२१३७
- **महावीर प्रतिष्ठान, पुणे –** निलम रमेशचंद्र शहा, मो. ९०९६८००५४७
- **सदाशिव पेठ परिसर, पुणे –** सौ. स्वाती राजेंद्रजी कटारिया, मो. : ९८८१२०४३९०
- **वडगाव शेरी, पुणे –** सौ. भारती सुभाष नहार, मो. : ९८९०२७८३४६
- **वडगाव मावळ, पुणे –** श्री. राजेंद्र बाफना, मो. ९८२२२६२९०१
- **औंध, पाषाण, हिंजवडी, सांगवी, थेरगाव –** श्री. शिरिषकुमार शांतीलालजी डुंगरवाल, मो. ९०२१३००५५९
- **दापोडी, पुणे –** श्री. प्रवीण झुंबरलालजी चोरडिया, मो. ९९२२७५७७०६
- **नांदेड सिटी, पुणे –** श्री. प्रकाशजी हरकचंदजी बोथरा, मो. ९०११९८३६६६ / ७२७२९७२९९९
- **दौंड, श्रीगोंदा –** श्री. रविंद्र चेनसुखलालजी गुगळे - ९८९०७२३४०२
- **अहमदनगर –** श्री. महेश एम. मुनोत- मो. ९४२०६३९२३०
- **जामखेड, आष्टी व कर्जत तालुका –** श्री. प्रफुल शांतीलालजी सोलंकी - मो. ९४०३६८५६७७, ८०८७७०००७०
- **बीड –** श्री. महावीर पन्नालालजी लोढा, मो. ९४२०५५६३२५
- **ता. सोनई, नेवासा, पाथर्डी –** श्री. मदनलालजी सी. भळगट - मो. ९४०४२३१६११, ९८८१४१४२१७
- **कुर्डुवाडी, बार्शी –** श्री. सुभाष मोहनलाल लुणिया, मो. ८७९३००००८१
- **मुंबई** खारघर- श्री. मदनलालजी गांधी-मो. ९८२०५३६७९३
- **नाशिक –** श्री. पुखराजजी बाबुलालजी जैन (कवाड) फोन:०२५३-२३११००८,मो.९४२३९३९९९०
- **नाशिक –** मनोज लखीचंदजी खिंवसरा, रविवार पेठ, नाशिक. मो. ९७६२२२१५०५
- **गारगोटी** (जि. कोल्हापूर) श्री. श्रीकांत राजाराम शहा, मो. ९८६०१०७७९२
- **श्रीरामपूर –**श्री. निलेश सुवालालजी हिरण, मो. : ९३२६९७२७४७
- **बारामती-** डॉ. महावीर छगनलालजी संचेती, फोन : ०२११२-२२३८०७ मो.:९३२५००४९५०
- **अमळनेर, जि. जळगाव –** श्री. मयुरकुमार केवलचंदजी जैन, मो. ९४२२६५७१७७
- **धुळे –** श्री. चेतन सतिष कोटेचा, सुभाषनगर, धुळे, मो. ९४०४१९२४३४, ९४२०६६१४२६
- **शहादा, जि. नंदुरबार –** श्री. मनोजकुमार विरचंदजी बाफना, मो. ९४२१५२९६२६
- **इचलकरंजी, जि. कोल्हापूर –** श्री. पोपटलालजी बिसनदासजी गुगळे, मो. ९८२२६५०९९८
- **मिरज, जि. सांगली –** श्री. राजेंद्र वसंतलाल शहा, मो. ९४२११०५७४८
- **कोल्हापूर –** सौ. लता कांतीलालजी ओसवाल, मो. ९४२३२८६०१४ फोन.०२३१-२६९५४३३
- **सातारा व सातारा जिल्हा –** श्री. जयकुमार कांतीलाल शहा, वाठार, मो. - ७५८८५६१३२०, ९८५०१८२६४४